उत्तर रामचरित्र नाटक ।



सत्यनारायण कविरत्न ।

॥ श्रीः ॥

भवभूति कृत

उत्तर रामचरित्र नाटक

अनुवादक—

धांधूपुरा (आगरा) निवासी

स्व० पं० सत्यनारायण शर्मा, कविरत्न

सम्पादक—

चतुर्वेदी अयोध्याप्रसाद पाठक,

बी. ए., एल. एल. बी.

प्रकाशक—

साहित्य-रत्न-भण्डार,

आगरा।

द्वितीय बार १५०० | सं० १९८२ | मूल्य एक रुपया

प्रकाशक
महेन्द्र कुमार जैन,
साहित्य-रत्न-भण्डार,
चौक-आगरा।



मुद्रक
कपूरचन्द जैन,
महावीर प्रेस,
किनारी बाज़ार-आगरा।

प्रकाशक का निवेदन ।

उत्तर राम चरित्र नाटक का द्वितीय संस्करण सर्व साधारण के सन्मुख उपस्थित करते हुए हमें अतीव हर्ष है। इसका प्रथम संस्करण भारती भवन फिरोजाबाद ने कविरत्नजी के सन्मुख ही प्रकाशित किया था। उसके समाप्त हो जाने पर बहुत दिन से यह पुस्तक अप्राप्य थी। इधर हिन्दी परीक्षाओं में यह नाटक रख दिया गया था, अतएव इसके प्रकाशित होने की बड़ी आवश्यकता थी। पं० सत्यनारायणजी कविरत्न की अकाल मृत्यु के कारण अनेक विघ्न बाधाएँ उपस्थित होती रहीं अतः यह काम अब तक रुका रहा। अब यह नाटक नए ढंग से प्रकाशित किया जाता है। इस में एक विशेषता यह रक्खी गई है कि कठिन शब्दों के अर्थ पाद टिप्पणियों में दिए गए हैं जिससे पाठकों को सुविधा रहे। इन टिप्पणियों के लिखने और नाटक के सम्पादन करने में जो कष्ट श्रीमान् चतुर्वेदी अयोध्याप्रसादजी पाठक ने उठाया है उसके लिए हम आपको सादर धन्यवाद समर्पित करते हैं।

हमारा विचार है कि कविरत्न जी की समग्र रचनाएँ एकत्रित प्रकाशित की जांय। प्रस्तुत पुस्तक उक्त संग्रह का प्रथम ग्रन्थ है। कई विशेष कारणों से इसमें इच्छा रहते हुए भी अच्छा कागज़ न लगाया जा सका, इसका दुःख है। आशा है कि प्रेमी पाठक इसके लिए क्षमा प्रदान करेंगे।

निवेदक

अक्षय तृतीया १९७९। —महेन्द्र

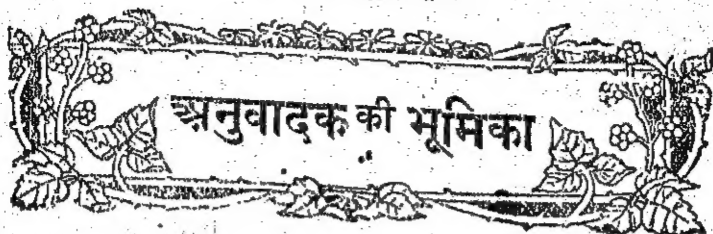
नाटक के पात्र

(पुरुष)	(स्त्रियां)
रामचन्द्र–अयोध्या के सूर्यवंशी राजा	सीता–रामकी पत्नी, जानकी
लक्ष्मण, शत्रुघ्न } राम के भाई	वासन्ती–सीताकी सहेली वनदेवी
जनक–रामके श्वसुर, मिथिला नरेश	आत्रेयी–एक ब्रह्मचारिणी
अष्टावक्र–ऋष्य शृंग के शिष्य	कौशिल्या–राम की माता
शम्बूक–एक शूद्र तपस्वी	तमसा, मुरला, भागीरथी } स्त्री रूपमें नदी विशेष
वाल्मीकि–एक ऋषि	वसुन्धरा–पृथ्वी, सीताकी माता
सौधातकि, भाण्डायन } वाल्मीकि के शिष्य	अरुन्धती–गुरु वशिष्ठ की स्त्री
कुश, लव } राम के पुत्र	विद्याधरी–देवी विशेष
चन्द्रकेतु–लक्ष्मण का पुत्र	
सुमन्त–सारथी	
विद्याधर–देव विशेष	

दुर्मुख, कंचुकी, प्रतिहारी, लड़के, सैनिक, आदि

स्थान–अयोध्या, पंचवटी, जनस्थान, वाल्मीकाश्रम ।

* ॥ श्रीहरिः ॥ *



——:०:——

कविवर भवभूति।

भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधर भूरेव भारती भाति।
एतत्कृत कारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥ १ ॥

(आर्या सप्तशती)

महाकवि कालिदास की भांति भवभूति का भी नाम, भारतवर्ष में ही नहीं समस्त भूमण्डल के विद्वानों में प्रसिद्ध है। इनके लेख प्रकृति और मानवी प्रकृति के सच्चे निरीक्षण तथा असामान्य ओजपूर्ण वर्णनात्मक चित्रण से परिपूर्ण हैं। कालिदास के समान इनका वंश परिचय असम्भव नहीं है इनके जीवन काल की बहुत सी बातों का यद्यपि पता नहीं लगता तथापि अपने कुल वृत्तान्त का भावी लोगों को पता देने का उन्होंने उपाय कर दिया है।

वंश तथा जन्मस्थान का परिचय।

स्वरचित नाटकों की प्रस्तावनाओं में सूत्रधार के मुख से उन्होंने जो अपने जन्मस्थान तथा वंश का परिचय दिया है, उसके सिवाय उनके विषय में अधिक जानने का और कुछ उपाय नहीं है। आपने

महावीर चरित नाटक के प्रारम्भ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है। दक्षिण की ओर (विदर्भ देशान्तर्गत) पद्मपुर नाम नगर में कृष्ण यजुर्वेदी तैत्तरीय शाखा के काश्यपगोत्रीय, पंक्ति पावन पञ्चाग्नि पूजक सोमरस पान करने वाले उदुम्बर नामधारी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण रहा करते थे। उनके वंश में महाकवि नामक एक महानुभाव ने बाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान किया था; इसी कुल में गोपाल भट्ट ने जन्म ग्रहण किया और उनके पवित्र कीर्ति नीलकण्ठ हुए। यही नीलकण्ठ श्रीकण्ठ पद सम्पन्न कवि भवभूति के पिता थे। इनकी माता का नाम जातुकर्णी तथा गुरु का नाम ज्ञाननिधि था।

उक्त लेख से ज्ञात होता है कि भवभूति कहीं बरार के आस पास के रहने वाले थे। दण्डकारण्य तथा गोदावरी नदी के मनोहर मनोज्ञ वर्णन से इस मत की भली भाँति पुष्टि होती है।

समय

यह किस समय हुए इसका जानना कठिन है। क्यों कि अपने नाटकों में इन्होंने कहीं तिथि सम्वत् आदि नहीं दिया है और न इनकी जन्म तिथि आदि का कुछ पता है। उसका पता केवल अनुमान से चल सकता है।

१—संस्कृत के पण्डितों में एक दन्त कथा प्राचीन काल से प्रसिद्ध है कि जब भवभूति ने अपना उत्तर रामचरित नाटक कालिदास को सुनाया तो उसे सुनकर वह अत्यन्त विस्मित हुए और आनन्द मग्न हो उसे माथे पर रख धन्य धन्य कहने लगे। उन्होंने केवल प्रथम अंक के २७ वें श्लोक के अन्तिम चरण

'अविदित गतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत्' में भवभूति को सूचित किया कि 'एवं' पद के स्थान में 'एव' प्रयुक्त किया जाय तो अर्थ विशेष शोभाप्रद होगा। सुनाजाता है कि उन्होंने इसे स्वीकार किया और अबतक उक्त श्लोक में वही पाठ चला आता है। इस मनोरञ्जक कथा में कोई बात असम्भव नहीं जान पड़ती क्योंकि इस नाटक की योग्यता ऐसी ही है कि शकुन्तला नाटक लिखनेवाला भी उसे शिरोधार्य करे। साथही कालिदास की विशाल बुद्धि तथा निराभिमानता का भी अच्छा परिचय मिलता है। *

इस किम्वदन्ती के अनुसार बहुतेरे लोग भवभूति को कालिदास का समकालीन मानते हैं। किन्तु इसके विरुद्ध प्रचुर प्रमाण हैं।

प्रथम तो कालिदास की कीर्ति प्राचीन काल से ही आबाल वृद्धों को विदित है परन्तु भवभूति को केवल पण्डित लोग ही जानते हैं। यदि वह कालिदास के समय में हुए होते तो जिन लोगों ने शकुन्तला तथा विक्रमोर्वशी की प्रशंसा की है उन लोगों ने उत्तर रामचरित और मालतीमाधव की भी प्रशंसा की होती।

दूसरे कालिदास के समय की सरल स्वाभाविक रचनाशैली से भवभूति का रचनाक्रम बहुत ही भिन्न है।

तीसरे भवभूति के नाटकों में कालिदास के ग्रन्थों को अनुलक्षित कर लिखे हुए कुछ स्थल भी पाये जाते हैं।

२—राजतरंगिणी के मतानुसार भवभूति का सम्बन्ध कन्नौज के महाराज यशोवर्मा के दरबार के साथ था, जो उस समय भारत-

* चिपलूणकर

वर्ष में विद्या का केन्द्रस्थल था। यहां भवभूति ने निस्सन्देह काव्य और नाटक के नियम सीखे जिनके कारण उन की बुद्धि का प्रकाश और भी विशदरूप से हुआ। किन्तु उनके भाग्य में कन्नौज का रहना नहीं था, क्यों कि यशोवर्मा को कश्मीर के प्रतापी राजा ललितादित्य ने पराजित किया और उसके साथ उन्हें कश्मीर जाना पड़ा।

कविर्वाकपतिराज श्री भवभूत्यादि सेवितः
जितः ययौ यशोवर्मा तद्गुण स्तुतिबन्दिताम्।
राज. ४. १४५.

इस श्लोक में ललितादित्य के प्रताप का वर्णन किया गया है और वाकपति का भी नाम आता है जो भवभूति के साथही साथ कन्नौज दरबार की शोभा बढ़ाते थे। इन्होंने निजरचित 'गोडवहो' नामक प्राकृतभाषा के ग्रन्थ में भवभूति का नाम दिया है।
(प्राकृत) भवभूइ जलहि निग्गय कव्वा मय रस कणा इवफुरन्दि
जस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहा पवन्धेसु ॥ *

जनरल कनिंघम के मतानुसार ललितादित्य का राजत्व काल सन् ६९३ से ७२९ पर्यन्त है। इसी प्रमाण से डाक्टर भण्डारकार प्रभृति भवभूति का समय सातवीं शताब्दी के आदि में ठहराते हैं।

२–श्रीहर्षचरित की प्रस्तावना के आदि के श्लोक में उसके रचयिता वाणकवि ने (जिसका समय सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध

(संस्कृत) * भवभूति जलधिनिर्गत काव्यामृत रस कणा इवस्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथा प्रबन्धेषु ॥

में होना निश्चय है) अपने से पूर्व अन्य कवियों तो का वर्णन किया है किंतु भवभूति के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है।

४–भवभूति की भाषा शैली से उनका आठवीं शताब्दी में होना पुष्ट होता है क्योंकि बाण श्रीहर्षादि तदनन्तर के कवियों ने लम्बे २ समासों की कृत्रिम रचना प्रणाली जो धीरे २ प्रचलित की वही उन के नाटकों में जहां तहां पर लक्षित होती है। इस लिये शैली क्रम के अनुसार भवभूति को कवि सुन्बधु, दण्डी बाण की श्रेणी में परिगणित करना तथा उसी समय के आसपास उस के प्रादुर्भाव को मानना अधिक सयुक्तिक जान पड़ता है। इन सब बातों से अनुमान किया जा सकता है कि कालिदास के पीछे ही भवभूति हुए होंगे क्योंकि जब उस कवि-केशरी की गर्जना शेष होजाने पर चारों ओर सन्नाटा छागया और लोगों को जान पड़ने लगा कि अब पुनः वैसी गर्जना का होना कठिन है तब पहले का स्मरण दिलाने वाले सुतरां उससे भी कहीं प्रचंड दूसरे की गंभीर गर्जना कर्ण कुहर में प्रविष्ट होने लगी यह बात वास्तव में अधिक चमत्कार जनक मालूम पड़ती है।

भवभूति

कवि के हृदय की परीक्षा तत्प्रणीत ग्रन्थों तथा तदधिकृत विषयों से ही हुआ करती है। कविहृदयनिर्गतभावमालिका का आस्वादन करने के पूर्व उस के ही विषय में परिज्ञान प्राप्त करना परमावश्यक है।

१–आत्मश्लाघा–उत्तर रामचरित्र नाटकमें पहले ही आत्मश्लाघा मिलती है–" बचन के बस जासु सरस्वती, करति

काज मनौ निज भामिनी " (अं. १ श्लो० २) आपने अपने कुल का परिचय सूत्रधार के मुख से दिलाते हुए अपने पदवाक्य-प्रमाणज्ञ होने की प्रशंसा कराई है। इस प्रकार का परिचय उसे उक्त दोष से दूषित करता है किन्तु तनिक विचार करने पर ज्ञात होजायगा कि यह विचार सर्वथा यथार्थ नहीं है। यह माना कि अपने मुंह अपनी प्रशंसा करना उचित नहीं है, तथापि संसार के बड़े २ ग्रंथकारों ने जो अपना २ जीवन चरित्र स्वयं लिखा है उसके लिये उन्हें कोई दोष नहीं देता सुतरां वे जीवन वृतांत होने के कारण बड़े आदर की वस्तु समझे जाते हैं, व उन्हें लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं। जिस प्रकार समर भूमि में महान वीरों की वीरोक्तियों से आत्मश्लाघा संयुक्त होने पर भी सुनने वालों का जी उकताता नहीं है किन्तु वे उसे बड़े उत्साह के साथ श्रवण करते हैं, ठीक उसी भांति रसिक जन भी जगत पूज्य कवीश्वरों की आत्म-दर्पोक्ति पर बहुत ही रीझते हैं। वे उन्हें बार २ पढ़ते हैं कभी तृप्त नहीं होते, जब २ उन्हें पढ़ते हैं तब २ अधिकाधिक तन्मय होते जाते हैं।

इसके सिवाय दूसरी बात यह भी है कि जिस किसी को गुणवान गुणग्राहकों द्वारा पहले ही आदर सन्मान प्राप्त होचुका है तब उसे आत्मश्लाघा के आश्रय की आवश्यकता नहीं रहती गुणी लोग सत्परीक्षकों की प्रशंसा से संतुष्ट हो अपने परिश्रम को सफल मान स्वस्थ रहते हैं, पर जब ऐसा नहीं होता, अर्थात गुण की चाह नहीं होती किन्तु उलटा उसका उपहास और अप-मान होता है; "नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धामूर्ध्निस्थिति-

वैचरणै व्यवसायनानि" वाले नियम को भूलकर जब लोग किसी प्रचंड ग्रन्थकार की अवज्ञा किया चाहते हैं तब उस अपमान की घोर यंत्रणा से व्याकुल होकर उसे अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के लिये आत्मप्रशंसा के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं सूझता। भवभूति की भी यही दशा हुई होगी; आत्म कवित्व का उन्हें बड़ा दृढ़ विश्वास था उनका यह सुदृढ़ निश्चय निन्दकों की अवज्ञा वा अपने ग्रन्थों की यथेष्ट ख्याति न होने से अथवा इस भय से कि कदाचित वे नष्ट न हो जांय, किंचित् भी न हुआ। अपने समय के लोगों की निन्दा से हतोत्साह न हो उस ने भावीकाल ही पर भरोसा रक्खा और "भविष्य में मत्कृति अभिनिन्दित होगी" यह उसने भविष्य कथन किया [विप०] इसका प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप उन्हीं का बनाया एक श्लोक उद्धृत किया जाता है।

येनाम के चिविहनः प्रथयन्त्यवज्ञां।
जानन्तु ते किमपितान् प्रतिनेषयत्न॥
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा।
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी (मा.मा.)

अस्तु इससे यही प्रतिपादित हुआ कि महान ग्रन्थकारों के आत्म विषयक लेख दूषणार्ह नहीं हैं किन्तु वे परमोपयोगी हैं। इसे आत्मश्लाघा न कह कर आत्मगौरव कहना अधिक उचित मालूम होता है क्योंकि आत्मयोग्यता के ज्ञान पर ही यह निर्भर है।

२ कर्त्तव्य परायणता—इस सद्गुण का तो इनमें इतना प्राचुर्य है कि उसे पूर्ण करने की धुन के आगे यह लोगों के कहने सुनने का कुछ भी विचार नहीं करते। समालोचकों के प्रचंडबचनबाणावली से इनका आत्मशासन यत्किंचित डिग-मिगाता भी नहीं। अवश्य उत्साह के साथ निस्स्वार्थ भाव से सत्कर्तव्य क्षेत्र में निर्भय अग्रसर होना ही उनका एक मात्र जीवनोद्देश है। आपके सूत्रधार ने कहा भी है।

चूक चाकरी में कबहुँ करनी चाहिए नाहिं।
सब प्रकार निरदोस कछु को पदार्थ जग माहिं॥
कुटिल मनुज सों रहि सकत भला कौन निस्संक।
सद्बनिता कवितान में जो नित लखत कलंक॥ (१–५)

प्रधान नायक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र को कवि ने निस्स्वार्थ कर्त्तव्य परायणता की कैसी सजीव मूर्त्ति बना कर दिखलाया है यह उसके पठन पाठन करने से ही विदित हो सकेगा।

३—हृदय की कोमलता—कर्त्तव्य पालनके साथ उनके हृदय में कोमलता का विकाश भी भली भांति परिलक्षित होता है। किसी का दुख देखा नहीं कि इनका मन द्रवीभूत हुआ नहीं। जनक के मिलने पर जब कौशिल्या चेत रहित हो गई है उस समय कवि से नहीं रहा गया और अरुन्धती के मुख से कहल-वाही दिया "पुरंध्रीणां चेतः कुसुम सुकुमारं हि भवति"। कई स्थलों पर रामचन्द्र के कोमल हृदय का चित्र खींच कर इन्होंने मृदुल स्वभाव का परिचय दिया है।

४–सुहृदता–चाहे कुछ भी उपकार न करे किंतु ये अपने सुहृद को अलौकिक वस्तु समझते हैं गद्गद् भाव पूरित आपका कथन है कि—

करु कछु न करै तउ सर्वदा, बसि समीप सबै विपदा हरै।
सुहृद जो कहुं जासु जहानमें,अवसि सो तिहिं जीवन मूरि है॥

(६–५)

५–सहृदयता—कवि का प्रधान गुण सहृदयता है। हृदय की श्रृंगार वीर करुणादि जो भिन्न भिन्न वृत्तियां हैं वे उसे अत्यंत सूक्ष्म एवं स्पष्ट रूप से अनुभूत होनी चाहिये। उक्त भिन्न २ वृत्तियों का विषय इंद्रियगोचर होते ही कवि का मन क्षुब्ध हो जाता है और उस क्षुब्धता के आवेग में उसके मुख से जो बातें निकलती हैं वही यथार्थ कविता है। तात्पर्य यह है कि कवि का हृदय ऐसा होना चाहिये जिसमें भिन्न २ मनोवृत्तियां पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हो जांय। यह नियम भवभूति की कविता में सर्वत्र चरितार्थ हो रहा है, उनका मन अत्यंत निर्मल एवं प्रेमी है वैसे ही स्वभाव नितांत सरल अथच गम्भीर होने के कारण जिस प्रसंग का श्लोक देखिये मानो वह रस उससे टपका पड़ता है। इससे विशेष परिचय प्राप्त करने के लिए उत्तर रामचरित नाटक में राम वासंती सम्वाद, लव चंद्रकेतु वार्तालाप तथा राम लव कुश सम्मेलन आदि का वर्णन पढ़ना उचित प्रतीत होता है।

६–मन की शुद्धता–बहुतेरे युरोपियन विद्वान संस्कृत कविता को यह दोष लगाते हैं कि उसमें श्रृंगार का सद्भव शुद्ध प्रेम रस

से किया हुआ नहीं पाया जाता, किन्तु अधिकांश में यह काम वासनाही से प्रगट हुआ पाया जाता है। यह कथन हटवादियों के मतानुसार किसी अंश में यथार्थ भी है। क्योंकि प्राचीन कविगण स्वानुभूत बातों तथा मनोवृत्तियों का वर्णन किया करते थे पर क्रमशः जब कीर्ति या धन के लोभ से काव्य रचने की प्रथा निकली और कविता बनाना एक नियत व्यवसाय ही हो गया तब से कवियों को स्वानुभव की कोई आवश्यकता नहीं रही। अपने आश्रयदाता भूपाल की रुचि के अनुसार उनकी काव्यकला नर्तकी की भाँति नाचने लगी। इस प्रकार संस्कृत कविता का आद्यशुद्ध स्वरूप जब से भ्रष्ट होने लगा तबके बहुतेरे काव्य और अब इधर जिनकी प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई गई वे वीभत्स भाणादि (नाटक का भेद) अलबत्ते उक्त दोष से दूषित हो सकते हैं। यदि यही एक बात होती कि उक्त दोष अकेली संस्कृत कविता ही में पाया जाता तो भी कुछ कहना न था, पर क्या उक्त दोष ग्रीक और रोमन लोगों की कविता में नहीं पाया जाता? अथवा इतने दूर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है क्या कोई कह सकता है कि अंग्रेज़ी भाषा का रस सर्वस्व जिस में एकत्रित किया गया है वह शेक्सपीयर कवि का कविताकलाप उक्त दोष से सर्वथा मुक्त है? यदि यह बात ऐसी ही है, तो कुटुंब के लोगों के, अर्थात पुरुष स्त्री लड़के आदि सब के एकत्र पढ़ने योग्य उस कवि की संक्षिप्त आवृत्ति अलग २ क्यों निकलती हैं!

जो लोग पूर्व देशीय भाषाओं के काव्य तथा निर्बन्ध रा(?)हते शृंगार वर्णन का परस्पर नित्य संबंध मानते हैं उन्हें उचित है कि वे हमारे भवभूति के नाटकों का पर्यालोचन करें।

ठकुर सुहाती न कहने के कारण अथवा वैसा करने को नीचता और अधमता समझने के कारण भवभूति लक्ष्मी के कृपापात्र न बन सके। किंतु उनके गंभीर एवं उदार मन को राजाश्रित हो विभवानुभव करने की अपेक्षा दरिद्रावस्था ही में स्वतंत्र रहकर अपनी वाग्देवी को निष्कलङ्क रखना अधिकतर अभीष्ट होगा ऐसा बोध होता है*। किसी राजदर्बार से उनका यथावत् सम्पर्क न रहने के कारण उनके मन की आद्यावस्था में कदापि अन्तर नहीं पड़ा और हम समझते हैं यही कारण है कि उनके शृंगार वर्णन में ऐसी अपूर्व कोमलता प्रौढ़ता तथा शुद्धता दृष्टि-गोचर होती है।

७-विद्वत्ता-अपने समय के बड़े बड़े पंडितों में उनकी धाकजमी हुई थी पदवाक्यप्रमाणज्ञ श्रीकंठपदलाञ्छनादि उपाधियों से तत्कालीन विद्वन्मडली द्वारा उनका मान किया गया था। उनकी रचना से भलीभांति प्रगट होता है कि वे व्याकरण न्याय मीमांसा आदि षट दर्शनों के अच्छे पारदर्शी थे। इस नाटक में स्थल २ पर विवर्तवाद उनके वेदान्त शास्त्र के ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वैराज असूर्य लोकों के वर्णन से उपनिषदों पर उनका अधिकार विदित होता है इसमें सन्देह नहीं कि भव-भूति अपने समय के असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान होगए हैं और इसी कारण संस्कृत साहित्य में वे महाकवियों में परिगणित किए जाते हैं। इनकी विलक्षण शैली ही से इनका विद्याभिमान टपका पड़ता है।

* क्या इसका भी असर उनकी प्रसिद्धि पर न पड़ा होगा।

८—सामाजिक विचार—और जैसे हिन्दू आचार्यों की भांति इनका हृदय संकीर्ण नहीं था। इनके ग्रन्थों के पठन पाठन से ही इनके उच्च उदार भावों का पता लगता है। जहां हिंदू समाज के विश्वासानुसार स्त्री और शूद्र को पढ़ना ही नहीं चाहिये वहां इन के नाटक में सब स्त्रियां पढ़ी हुई मिलेंगी और शूद्र भी ऐसा ज्ञानवान निकलेगा जिसका विनम्र वाक्य "सत्संगजानि निधना-न्यपि तारयन्ति" स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। इस नाटक में स्त्रीजाति के भिन्न २ रूपों का बड़ी उत्तमता से वर्णन किया गया है। कहीं पुत्री जानकी पिता जनक के चले जाने से शोकाकुल है कहीं प्राणेश्वरी सीता का अनुपम चित्र खींचा जारहा है। कहीं ब्रह्मचारिणी आत्रेयी वाल्मीकि के आश्रम से वेदाध्ययन के लिए अगस्त्याश्रम को आरही है, कहीं कौशिल्या माता सास और समधिन बन कर आती हैं और भगवती अरुन्धती विदुषी और तपस्विनी के नाम को पूर्णतया चरितार्थ कर रही हैं। इस के पढ़ने से ठीक ज्ञात हो जायगा कि भवभूत स्त्रियों को कितनी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। उनके विचार में स्त्रियां न केवल प्रेम की प्रतिमा और सुख की मूर्ति हैं वरन वे आदर की सामग्री और पूजन के योग्य हैं। *

राजर्षि जनक के मुख से अरुधन्ती का अभिवादन करते हुए कवि ने उपरोक्त विचार की पुष्टि की है [अंक ४—श्लोक १०]। इनके विचार में चाहे स्त्री हो चाहे शूद्र हो-बालक हो चाहे बूढ़ा हो यदि वह गुणी है तो उसका गुण सर्वथा अवश्य आदरणीय है

* (सज्जन द्विवेदी)

"केवल गुनी को गुन पूजत, नहिं रूप अरु नहिं बैस है" [अंक ४--श्लोक ११]

इनके ग्रन्थों से विदित होता है कि तब तक स्त्री शिक्षा पाप नहीं मानी गई थी और न पर्दे ही का प्रचार था; आज कल की कपट मिश्रित चुनाचुनी के ढंग की महमानदारी न होते हुए भी लोगों का जीवन पवित्र था। ऐसेही स्वभाव के कारण उन विविध लोकोत्तर चरितातिशय आकारानुभाव गाम्भीर्य्य संभाव्यमान आर्य महापुरुषों को देखते ही लव जैसा उद्दण्ड वीर बालक मन्त्र-मुग्ध सा होगया था। कहीं जनक को सीता निर्वासन पर क्रोध आ भी गया तो वह दूध के झाग की तरह शीघ्र ठण्डा होगया। इस नाटक में बालक भी आज कल जैसे दुर्बोध, लज्जाशील व डरपोक नहीं हैं; वे भी दर्प व सौजन्य का यथोचित बर्ताव करना जानते हैं। आत्मगौरव की यथोचित रक्षा करना ही उनका मुख्य उद्देश्य है।

लव और चन्द्रकेतु के मिलने का बहुत अच्छा वर्णन किया गया है। यह दोनों वीर युवा हैं जिनमें युद्धका उत्साह भरा है परन्तु वे एक दूसरे के साथ वीरोचित सुशीलता और सम्मान दिखलाते हैं। यह ध्यान रहे कि यह नाटक यूरुप में वीरता की उन्नति (Chivalry) होने के कई शताब्दी पहिले लिखा गया था।

भवभूति की सच्चे ब्राह्मणों में बड़ी श्रद्धा थी उनका विश्वास था कि

ब्रह्मज्योति को तत्व जिन, प्रगट कियो अभिराम।
तिन विप्रन के वचन में, नाहिं संशय को काम॥
श्री जिन्ह बानी माहिं, बसति सदा मंगल करनि।
निहचै कोर सो नाहिं, मृषा सबद पकहु कहत॥ (४-१८)

भवभूति ढोंग रचने वाले लफंगे बाबाजियों को भी खूब जानते थे, और प्राचीन ऋषि मुनियों को उन से, अलग समझते थे। यदि समाज में कोई कुरीति प्रचलित है तो भवभूति उसे छिपाना अच्छा नहीं समझते थे। शास्त्रानुसार मांस खाना चाहिये या नहीं; इसी कथाको इस नाटक के चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में दो चेलों में वाद विवाद कराकर दिखा दिया है। सौधातकि के मुंहसे मांसाहारियों को व्याघ्र वा भेड़िया तक कहलवाया है। भाण्डायान समांस मधुपर्क का विधान वेदों तथा धर्मसूत्रोंमें बतलाता है और उनका प्रमाण भी देता है। बहुतों के मतानुसार इस जगह भवभूति ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है (जैसे महोक्ष, महाज) उनके बहुधा कई २ अर्थ किये जाते हैं। कुछ भी हो किन्तु उक्त वाद विवाद तथा मतभेद आज कलकी घास पार्टी तथा मांस पार्टी वालों से खूब मिलता है।

९—राजनैतिक विचार—अनादि काल से राजसत्ताधिकार रहने के कारण भारतवर्ष इस प्रकार की शासन प्रणाली का अभ्यस्त होगया है। यहां के लोगों के चित्त में, राजा ईश्वर के अवतार के तुल्य, बैठा हुआ है। ऐसे देश, काल तथा भावों की ऐसी स्थिति में उत्पन्न होते हुए भी भवभूति प्रजातांत्रिक विचारों के विदित होते हैं। जिस प्रकार ग्रीस के प्राचीन प्रारम्भिक इतिहास में वहां के देश भक्तों की सम्पूर्ण चेष्टा प्रजा-हित-कामना में सफल प्रयत्न होने की रहा करती थी, ठीक उसी प्रकार के—नहीं उन से भी कहीं उच्चतर-उदार भावों का विकास भवभूति ने अपने पात्रों से मनसा वाचा कर्मणा एवं सम्पूर्ण रूपेण कराया है। केवल रामचन्द्र जी ही प्रजा के सन्तुष्ट करने की चेष्टा में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को

पक्षपात नहीं हैं (अंक १–१२) वरन जिनके बुद्धिबल से राजकाज चलता था और जिनको किसी प्रकार के स्वार्थ साधने की कामना नहीं थी उनही रघुकुल के आचार्य कुलगुरु वशिष्ठ की राम के लिये आज्ञा थी कि:—

तुव धर्म नित्य प्रजानुरंजन निज प्रमाद विहाय।
तज्जनित यश धन प्रचुर ही रघुवंश की प्रभुताय [१–११]

इनकी आज्ञा का श्रीरामचन्द्रजी ने अक्षर २ पालन किया है। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक समाजिक सामालोचकों की दृष्टि में राम का सीता निर्वासन कार्य अमानुषिक प्रतीत होता है किन्तु प्रजानुरंजन कर्तव्यकर्म की प्रधानता को जिसका उल्लेख कविने रामके मुखसे कराया है यदि निरपेक्ष भाव से विचारा जाय तो राम क्षन्तव्य हैं। लोकमत को उल्लंघन करने का संकल्प रामको स्वप्न में भी नहीं होता, राम जानते हैं कि जब राजोपचार प्रबल होता है तभी प्रजा कातर कण्ठ से अपनी सच्ची सम्मति का उद्गार उगलती है। पीड़ित प्रजा का उस निस्स्वार्थ सम्मति के अनुसार कार्य करना राजा का प्रधान कर्तव्य है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥
(तुलसी दास)

राजनैतिक विचारों में ऐसे धार्मिक विचारों का नियोजित करना युक्तियुक्त है या नहीं इसके निराकरण कार्य से इस विषय का विशेष सम्बंध नहीं है, किन्तु इतना अवश्य कहना पड़ता है कि उस समय के राजाओं की शासनप्रणाली उक्त प्रकार

के गुण व दोष से [आज कल के समालोचकों की समझ में जैसा कुछ हो] अवश्य प्रयुक्त रहती थी। ऐसा संस्कार उनके हृदय में वंश परम्परा से ही अंकुरित होता रहता था उस समय की शिक्षा शैली ऐसा ही उपदेश देती थी।

जो लोग सती सीता के दुःख से कातर होकर राम को यह दोष लगाते हैं कि राम में मानसिक बल नहीं था क्योंकि उन्होंने ऐसी छोटी २ बातों में प्रजाको सन्तुष्ट और प्रसन्न करने के लिये इतनी उग्र उत्कण्ठा प्रगट की थी, ऐसा समझने वाले अपनी अनुदार आलोचना से महाराज मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अनुपम आत्म-त्याग-सौन्दर्य को नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। राम स्वयं जानते थे कि सीता निर्दोष है और उन्हों ने उस निरपराधिनी को देश निकाला दे कर घोर घृणित कार्य किया है—उनके ही विलाप से यह सब विदित होता है। और वह आत्मग्लान की अन्तरानल से कितना कुढ़ते थे यह पद पद पर प्रगट होता है। इन्हों ने सीता निर्वासनजनित पाप का प्रायश्चित्त अपने विलापों से किया है। कवि ने तमसा के मुख से ठीक कहलाया है कि:—

उपरि पूर्ण तड़ाग जबै भरै, जल निकासन तासु प्रति क्रिया।
विपुल शोकदशा मधिहु तथा, रुदन धीरजको सदुपाय है*[३-२९]

*Give sorrow words: the grief that does not speak,
Whispers the over fraught heart and bids it break.

(Shakespere.)

अस्तु जब हम नृप-कर्त्तव्य-पालन-कसौटी पर राम के सीता निर्वासन-कार्य की परीक्षा करते हैं तो उनके अद्भुत आत्मत्याग और अनुपम धीर गम्भीर उदार भाव के अनन्त पारावार में उक्त भ्रमात्मक कलंक-कालिमा अनन्त बार धुल जाती है।

एक बात और भी ध्यान देने है वह यह कि प्रजानुरंजन कार्यों से राम को जी भर कर रोने का भी तो अवकाश न मिला। चाहे कैसे ही घोर शोक का समय हो राम ने कर्तव्य पालन को ही प्राधान्य दिया है। जब उन्हों ने सुना कि यमुना तट पर तप करने वाले तपस्वियों को लवणासुर ने सताया है तो राम सब रोना धोना भूल गये और उस असुर के बध का प्रबंध करने में जा लगे। फिर एक ब्राह्मण ने एक मरा लड़का राजद्वार पर पटक कर ज्यों ही दुहाई मचाई और आकाशवाणी हुई उसी समय राम ने अपने शोक को भूल कर शम्बूक के मारने के लिये प्रस्थान कर दिया। इन बातों से भली भांति प्रगट है कि प्रजाहित के लिये राम अपने सुख दु:ख की कुछ भी पर्वाह न करते थे।

राम का करुणा-क्रन्दन-कलाप इस बात का साक्षी है कि सीता को निकालने में राम की कितनी प्रवृत्ति थी, किस धर्म संकट में फंसकर राम से यह काम बन पड़ा था। आधुनिक सामाजिक सुधारकों के शुष्क वादविवाद तथा व्यर्थ तर्क वितर्क में पड़कर देश काल की परिवर्तित दशा को प्राचीन पूर्व स्थिति में ढलकर छिद्रान्वेषण करना अपने प्रधान लक्ष्य से भटक जाना है। भवभूति के राम ने अपने जीवन में 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' को चरितार्थ किया है। कवि कल्पित उनका

चित्र स्वाभाविक है। राम वीर हैं, पराक्रमी हैं, प्रजापालक हैं-लेकिन सब से पहले आदर्श पुरुष हैं। धीरोदात्त* नायक के सम्पूर्ण लक्षणों ने उनमें आश्रय पाया है। नेता+ के सब गुण रामचन्द्र जी में विद्यमान हैं और इन्हीं नमूनों को सामने रख कर भवभूति ने राम का चरित्र चित्रण किया है। तथापि भवभूति वासन्ती के मुख से सीता-निर्वासन के लिये राम पर कटु तथा वक्र संकेतों की विकट बौछार करता है। यह सब कुछ करते हुए भी बिचारे भवभूति अपना कवि कर्त्तव्य पालन करने में कहां तक सफल प्रयत्न हुए हैं, इसका निर्णय केवल विज्ञ पाठकों पर ही छोड़ा जाता है।

१०—प्रकृति वर्णन—जिन किन्हीं वस्तुओं का वर्णन करना हो उनका साक्षात् अनुभव कवि के लिये अत्यावश्यक है। पहले तो बड़े २ कवियों में भी प्रायः यह सामर्थ्य नहीं पाई जाती कि उनके वर्णन यथार्थ बन सकें अर्थात् उन पदार्थों के साक्षात्कार से जो कल्पना मन में आती है वह केवल वर्णन पढ़ने से मन में कदापि आविर्भूत नहीं होती। जब इन वर्णनोंकी ही ऐसी दशा है

---

* महा सत्वोऽति गम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाऽहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥

+ नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षप्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साह स्मृति प्रज्ञा कलामान समन्विताः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

सो इनकी प्रति कृति में यथार्थता और रस कहांतक रह सकते हैं इसका विचार पाठक स्वयं कर सकते हैं (इस प्रकार की त्रुटि से भवभूति के नाटक अधिकांश में दूषित नहीं हैं। केवल इनका ही सृष्टि-विभव-वर्णन आधुनिक अंग्रेज कवियों की सजावट के ढंग पर है) इस का यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि संस्कृत के और कवियों ने सृष्टि पदार्थों का वर्णन लिखा ही नहीं किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन कवियों का ढंग निराला है। उनके वर्णन में अत्यंत प्रसिद्ध एवं निश्चित बातें कभी छूट ही नहीं सकतीं। जिन्हें पढ़कर यह शंका स्वभावतः उत्पन्न होती है कि उनमें से बहुतेरों ने अपने वर्णित प्रकृति दृश्यों का स्वयं अनुभव कदापि नहीं किया परन्तु प्राचीन ग्रन्थों को पढ़कर वैसा लिख दिया है। किन्तु भवभूति ऐसे कवियों में न थे। उपमा और प्राकृतिक वर्णन यद्यपि कालिदास का सबसे अनूठा है किन्तु वर्णन में उस वस्तु का रूप आंख के सामने खड़ा कर देना भवभूति ही जानते थे। उत्तर रामचरित में आश्रम, तपोवन, पर्वत, गुल्म, लता आदि का ऐसा अद्भुत वर्णन किया गया है जैसे यह सब पढ़ने वाले के सामने ही हैं। मालती माधव में श्मशान का वर्णन पढ़ने से रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं। उन्होंने जो स्थान २ पर प्रकृति के उत्तमोत्तम वर्णन लिखे हैं उन्हें कवि कपोल कल्पित व अयथार्थ कहना युक्ति युक्त नहीं है। इससे यही प्रकट होता है कि प्रकृति देवी के भांति २ के मनोहर दृश्यों को अवलोकन करने का भवभूति को प्रकृति जात परमोत्साह था। दण्डकारण्य, जनस्थान, पञ्चवटी, गोदावरी नदी

के स्वच्छ स्वाभाविक वर्णन इस के साक्षी हैं। बिना अनुभव के यह कोई कैसे वर्णन कर सकते हैं। (चि. प.)

उनके ग्रंथ।

इनके बनाए तीन नाटक हैं। १ मालती माधव*, २ महावीर चरित, ३ उत्तर रामचरित। साहित्य महोदधि के इन तीनों रत्नों का जिसने आनन्द नहीं लिया उस के लिये काव्य का पठन पाठन व्यर्थ ही है। कवि भवभूति की सरस्वती मानों अपनी तीन धाराओं से ३ नाटकों के आकार में बही है। कुरुक्षेत्र के समीप सरस्वती एक ही धारा में थोड़ी दूर बहकर लोप होगई है किन्तु भवभूति की प्रतिभा के उद्गार में वह अविछिन्न त्रिःस्रोत हो बहती ही चलीगई है। मालती माधव में शृंगार रस के रूप में महावीर चरित में वीरता का रूप धर और उत्तर रामचरित में करुणारस के प्रवाह में इस तरह यह समस्त विदग्ध मंडली को तीन प्रकार के रस से आप्यायित और आप्लावित कर रही है। साहित्य दर्पणाकार "काव्यस्यात्मा ध्वनिः" ध्वनि को ही काव्य की आत्मा मानते हैं। वह ध्वनि भवभूति की कविता से पद पद पर टपकी पड़ती है यही कारण है कि काव्य प्रकाश सरस्वती कंठाभरण वाग्भट्टालंकार आदि साहित्य के प्राचीन ग्रंथ कुवलयानंद चित्र मीमांसा साहित्य दर्पण आदि नवीन ग्रंथों में भवभूति के श्लोक बहुधा उदाहरण की भांति उद्धृत किये गये हैं।

---

* पं० सत्यनारायण कविरत्न कृत मालती माधव का हिन्दी अनुवाद साहित्य-रत्न-भंडार, आगरा से प्राप्त हो सकता है।

जैसा प्रसाद गुण कालिदास के काव्यमें भरा है वैसीही ओजगुण-पूर्ण ध्वन्यात्मक नई२ उक्ति-युक्ति भवभूति की कविता में, अधिकतर उत्तर रामचरित में है। इसकी विचित्र रचना से मुग्ध होकर कोई२ सहृदय साहित्य मर्मज्ञ उन्हें कालिदास से बढ़ा चढ़ा मानते है। "उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते"*

उनका यह कहना अधिकांश में बहुत ठीक है। इनका शृङ्गार तथा वीर रस वर्णन तो किसी भी संस्कृत कवि से कम नहीं है और करुणारस के वर्णन में तो भवभूति संस्कृत के सब कवियोंसे बढ़ गए हैं, यह बात प्राचीनकाल ही से चली आती है। इनकी रचना में जो ओजस्विता और भाव की सचाई है उस का पता तो उन्हीं को लगता है जो मूलमें इनकी कविताओं को पढ़ते हैं। मधुर छंद गूंथने में भवभूति अद्वितीय हैं; जिस अर्थगौरव भाव का समयोचित सत्यता तथा भाषा के मनोमुग्धकारी माधुर्य के साथ यह कवीन्दु हार्दिक भाव का आदर्श सारगर्भित अक्षरावली में खींचते हैं कदाचित उसे देखकर इनके प्रत्येक पद्य को सचित्र भाव कहने से अत्युक्ति नहीं होगी। उन्हें पढ़ने से इनकी कवित्वशक्ति का, चमत्कारिणी प्रतिभा का और असली कविता का कुछ पता चल सकता है। उन की वाणी की किसी ही प्रकार से परीक्षा कीजिए साहित्य की कैसी ही कसौटी पर कसिए वह पूर्ण तथा उच्चश्रेणी की है और उसके पठन पाठन से लोकोत्तर आनंद अवश्य होता है। इसी कारण भवभूति की गणना विद्वानों ने महाकवियों में की है।

* पं० बालकृष्ण भट्ट

भवभूति और कालिदास।

संस्कृत के परमोत्कृष्ट कविवृन्द में कालिदास और भवभूति ही ऐसे हैं जिनका गुणगान आजतक अनविच्छिन्नरूप से चला आता है। सर्व सम्मति से दोनों ही आदरणीय तथा पूज्य हैं। इन दोनों महाकवि कृत रचना की परस्पर तुलना कर के यथार्थ तारतम्य निकालना जरा टेढ़ी खीर है। सब की रुचि एक ही सी नहीं होती कोई कालिदास को उत्तम मानते हैं और कोई भवभूति को, किंतु ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो अपने अपने ढंग के दोनों ही निराले हैं। दोनों ही प्रथम श्रेणी के कवि हैं इन दोनों की जैसे उत्कृष्ट प्रतिभा प्रकृति-जात थी, वैसे ही भाषा भी अभिप्रायानुसारिणी थी। दोनों की कल्पना, तथा पद रचना में प्रौढ़ता और सरसतादि जो महाकवियों के गुण हैं पूर्णरूप से पाये जाते हैं। यदि कालिदास का कल्पना पर अधिकार है तो भवभूति भी मानव मनोधर्म के भिन्न२ स्वरूप को चित्रित करने में सिद्धहस्त हैं।

एक शृंगार रस का निदर्शन विशद प्रकार से कराते हैं तो दूसरे वीर तथा करुणारस की प्रतिमूर्ति सामने खड़ी कर देते हैं और सरस शृंगार रसको चित्रांकित करने में अपने प्रतियोगी से किसी भांति कम नहीं हैं। कालिदास के शृंगार का उद्भव कहीं कहीं पर विशुद्ध प्रेम से नहीं किन्तु बहुतांश कामवासना से ही प्रणोदित कहा जाता है। किन्तु भवभूति का शृंगार सहज तथा पवित्र भावनात्मक है। कालिदास की वर्णनशैली सरल स्वाभाविक मृदुल मनोहर है और भवभूतिकी रचना प्रणाली कृत्रिम,

श्रमशिल्पित, प्रौढ, समयानुकूल, तथा लम्बे २ प्रशस्त प्रभाव शाली समासों से गुम्फित है। भवभूति के नाट्य पात्र सच्चे और रूपान्तर मात्र हैं और उनके नाटक तत्समय के समाजिक भाव, रीति, नीति, आचार, विचार और पारस्परिक व्यवहार के जैसे के तैसे प्रतिबिम्ब हैं उनके द्वाराही तत्कालीन हिन्दू सामाजिक अभिरुचि भाव सभ्यता का सच्चा पता चलाता है। कालिदास के पश्चात् होने से भवभूति को उनके भाव तथा विचारोंका अनिवार्य अनुकरण करना पड़ा है, किन्तु वह अनुकरण भी कहीं २ बहुत बढ़िया हुआ है। जिस बात को कालिदास व्यङ्गार्थ में प्रगट करते हैं वही भवभूति द्वारा वाच्यार्थ में कथन की जाती है। कालिदास पर बहुधा शास्त्रीय नियमों का अंकुश नहीं है किन्तु भवभूति पूर्णतया यथावत् शास्त्रीय नियमों का पालन करते हैं। उनके आतिथों का स्वागत मधुपर्क बिना होता ही नहीं—कालिदास के नाटकों में विदूषक महाराज मिलेंगे जिन की उपहासजनक बातों से गाम्भीर्य भाव को भागना पड़ता है, किन्तु भवभूति के नाटकों में विदूषक का नाम भी नहीं* प्रत्युत दुर्मुख को भी कर्त्तव्यपरायण होना पड़ता है। वास्तविक घटनाक्रम के गांभीर्य की रक्षा के निमित्त कदाचित भवभूति ने ऐसा किया है। कालिदास के कोई भी नायक नायका दाम्पत्य विज्ञान के उज्ज्वल उदाहरण आदर्शपति राम और आदर्श पत्नी सीता के जोड़ के अल्प काल के लिए भी नहीं कहे जासकते।

---

* कदाचित भवभूति के समय में देशीय राज्यों के परस्पर विरोध के कारण उपहासजनक बातोंको छोड़ लोग प्रायः गम्भीर रहा करते होंगें।

उत्तररामचरित और शकुन्तला नाटक।

यह दोनों नाटक आपस में बहुत मिलते हैं। दोनों ही संस्कृत साहित्याकाश के दो चंद्र हैं-दोनों ही में नायकों ने अपनी गर्भिणी स्त्री का परित्याग किया है केवल अन्तर इतना ही है कि एक ने तो शापजनित भ्रम से और दूसरे ने लोकमत के आदर से ऐसा किया है! दोनों नायकों की स्त्रियों को आगे या पीछे महर्षियों की आश्रय प्राप्त हुआ है, दोनों ही नायक अपने आपे में आकर अपनी २ पत्नी के लिये विलाप करते हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि दुष्यन्त का मनोरंजन कभी २ विदूषक द्वारा हो जाया करता है और विचारे राम को "स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनाविनोदोऽप्य सुलभः" हो रहा है। ऐसी दशा में राम का पुटपाक के समान करुणारस गाम्भीर्य युक्त होगया है। मनो-विनोद की अपेक्षा राम का शोक सीता की सहेली वासन्ती के मृदु तथा कटु उपालम्भों से और भी बढ़ गया है। परित्याग के समय शकुन्तला दुष्यन्त पर कोप करती है, परन्तु सीता ने कहीं भी राम के लिये कटु वचन का प्रयोग नहीं किया, स्त्री के आत्मत्याग की सीमा इस चित्रण से अधिक नहीं हो सकती,—चिरस्थाई प्रेम का इससे बढ़ कर वर्णन नहीं किया जा सकता और न कहीं किया गया है,—सुशील सत्-पति-प्रेममयी क्षमा करने वाली सीता से बढ़कर उत्तम पवित्र देवतुल्य चित्र मनुष्य की कल्पना नहीं खींच सकती है। अंत में दुष्यन्त और राम दोनों ही अज्ञात भाव से अपने पुत्रों को मिलकर मुग्ध हो जाते हैं और दोनों ही

नाटकों के नायक महर्षियों के आश्रम में उन की कृपा से अपनी अपनी स्त्री पालते हैं। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि उधर तो महाभारत के एक रूपक को लेकर कालिदास ने शकुंतला नाटक की रचना कर संसार को मोहित कर दिया, इधर कालिदास के पश्चात्कालीन भवभूति ने रामायण से उसी प्रकार का एक रूपक ले उत्तर रामचरित्र को रच उक्त कवि की शकुंतला का जोड़ उपस्थित कर दिया और इस भांति प्रसिद्धि प्राप्त की। अस्तु यदि भवभूति का लक्ष्य उत्तर रामचरित बनाते समय शकुंतला रहा हो तो असंभव नहीं है।

संकेत।

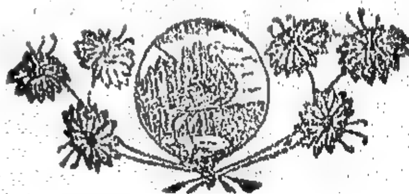
नाटक के आरम्भ में एक ब्राह्मण आकर सभा को आशीर्वाद देता है, इस आशीर्वाद को नान्दी कहते हैं। फिर नाटक खेलने वालों का मुखिया जो सूत्रधार कहलाता है सभा के सामने कुछ कह कर कहता है कि आज अमुक नाटक का खेल किया जायगा इस बातचीत को प्रस्तावना कहते हैं। नाटक के भागों को अंक कहते हैं और जो कोई अधिक प्रसंग किसी अंक के आदि में आता है वह विष्कम्भक अथवा गर्भांक कहलाता है। नाटक के पढ़ने वालों की सुगमता के लिये कुछ बातें कोष्टकों में लिखी जाती हैं जैसे

(नेपथ्य में)—इसका मतलब यह है कि यह बात कहीं परदे के पीछे से सुनाई पड़ती है जिसका कहने वाला रंगभूमि पर उपस्थित नहीं है—इस चिन्ह का प्रयोग उस समय होता है जब नाटककार किसी बात को बिना रंगभूमि पर खेले दर्शकों को ज्ञात करादेना चाहता है।

(आप ही आप) अथवा (अलग) का अर्थ है कि कहने वाला इस प्रकार बोलता है मानो दर्शक तो सुन रहे हैं परन्तु दूसरे नाटक खेलने वाले नहीं सुन रहे हैं ।

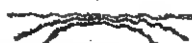
जहां लिखा है कि अमुक का प्रवेश, अथवा अमुक आता है, जाता है इत्यादि इससे जानना चाहिये कि वह पात्र रंगभूमि पर आया अथवा वहां से नेपथ्य अर्थात् परदे के पीछे चला गया ।

धांधूपुर–आगरा
७–९–१३ } सत्यनारायण ।



॥ श्री हरि ॥

उत्तर रामचरित्र नाटक ।



[नान्दी]

बन्दौं श्रीमद्वालमीकि कवि-मग-दरसावन ।
रामचरित-नित-नव-रसाल-पिक कृत-जग-पावन ॥
पुनि वाचत मनहरनि रसिक-वर-हृदय-विलासिनि ।
अरथ-धरनि जय करनि विविधविज्ञानाविकासिनि ॥
श्री शब्द-मूर्त्ति-धर ब्रह्म1 की जो मंजुल माया लसैं ।
अस अमृत-बानी षटपदी2 नित सत मुख अम्बुज3 बसैं ॥१॥

[सूत्रधार का प्रवेश]

सूत्र०—बस, अधिक विस्तार का काम नहीं—आज भगवान काल-प्रियनाथ की यात्रा के शुभ उत्सव पर सर्व सज्जन महोदयों को विदित हो कि कश्यपकुल-उजागर, अखिल-विद्या-सागर, जननिजातुकर्णी के पवित्र गर्भोत्पन्न, श्रीकण्ठ-पद-सम्पन्न जिनका नाम श्री भवभूति प्रसिद्ध है—

बचन के बस जासु सरस्वती,
करति काज मनौ निज भाँमिनी ।

---

1 शब्द ब्रह्म = जो ब्रह्म अनुभव में नहीं आता केवल शब्दों में बतलाया जा सकता है। 2 भ्रमरी, सरस्वती, छप्पय छंद। 3 कमल।

मुदित खेलत ता सुकवीन्द्र के,
विमल उत्तररामचरित्र कों ॥ २ ॥

(कुछ ठहरकर) अच्छा, तो अब मैं कार्यवश अयोध्या-वासी और महाराज श्री रामचन्द्र के समय का बना जाता हूं। (चारों ओर देखकर) अरे, क्या आज तक पौलस्त्य-कुल-धूमकेतु श्री राघवेन्द्र के राज्याभिषेक का समय है ! इन दिनों तो निरन्तर आनन्द-मंगल और गाने बजाने की धूम धाम मची रहनी चाहिये, फिर किस कारण से विरुदावली गाते हुए प्रफुल्लित चारण और भाट लोगों से चौराहे शून्य दिखलाई पड़ रहे हैं।

नट—(आकर) भाई, बात यह है कि महाराज ने लंका के युद्ध में सहाय करने वाले बन्दरों, राक्षसों तथा अनेक देशों के ब्रह्मर्षि और राजर्षि लोगों को—जो राज्याभिषेक के सम्मान के लिये आये थे—यहां से बिदा कर दिया है, उन्हीं के सत्कारार्थ इतने दिनों तक उत्सव रहा था।

सूत्र०—अच्छा, ठीक !

नट—और देखो—

श्री वशिष्ठ सौं पूर्ने सुरच्छित सब महरानी।
कौशल्यादिक मातु प्रेम-पूरित सुख-सानी।
गुरु-तिय के सँग गईं सुतापति[1]-सदन सुहावन।
निरखन हेतु पुनीत यज्ञ-उच्छव मनभावन ॥३॥

---

[1] दामाद

सूत्र०—अजी, मैं विदेशी हूं, इसीलिये पूछता हूं कि ये सुतापति कौन हैं !

नट— शान्ता जो सुन्दर सुता, दसरथ की गुनमाल।
धर्यो लोमपादहिं सदय, गोद धरन भुअपाल ॥४॥
उसका विवाह विभाण्डक के पुत्र शृंगीऋषि के साथ हुआ, जो आज कल बारह वर्ष में पूर्ण होने वाला यज्ञ कर रहे हैं, इसी कारण पूर्ण गर्भवती जानकी जी को छोड़ सब बड़े बूढ़े वहां गये हैं।

सूत्र०—इससे हमको क्या ? हम तो चारण हैं, चलो राजद्वार पर चलें और निज वंशपरम्परानुसार राजा की विरुदावली बखानें।

नट—तो वहां के लिये कोई बढ़िया स्तुति सोच लीजिये जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो।

सूत्र०—सुनो भाई !

चूक चाकरी में कबहुं, करनी चहिये नाहिं।
सब प्रकार निरदोष कहु, को पदार्थ जग माहिं ॥
कुटिल मनुज सों रहि सकत, भला कौन निरसंक।
सध्धनिता१, कवितान में, जो नित लखत कलंक ॥५॥

नट—अजी, ऐसों को तो अति कुटिल कहना चाहिये क्योंकि,

सती तियहु कों दोस दै, जग जब करत अनीति।
अपर२ तियन की जगत में, को करिहै परतीति ॥

१ सच्चरित्र स्त्रियां। २ अन्य।

केवल निन्दा मूल तिन, राछस घर कौ बास।
अनल१ परिच्छहु मैं तनक, नहिं लोगनि बिस्वास ॥६॥

सूत्र०—जो कहीं उड़ते २ इस चर्चा की महाराज के कान में भनक भी पड़ गयी तो बड़ा ही अनर्थ हो जायगा।

नट०—ऋषी और देवता सब भला करेंगे (इधर उधर घूम कर) क्यों जी, इस समय महाराज कहां हैं? (कुछ सुनकर) सुनने में तो यह आया है कि—

रघुनन्दन के अभिनन्दन कौं,
यहँ आइ बिताइ के घोस२ सुखारे।
अभिसेक के उच्छव कौं करिकै,
मिथिलापुर कौं मिथिलेस सिधारे॥
यहि कारन भारी उदास सियै,
समझावन कौं कहि बैन पियारे।
तजिकै धरमासन, प्रेम भरे,
नृप रामजू मन्दिर कौं पग धारे॥ ७॥

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना।



१ अग्नि २ दिन

अंक १

(स्थान–राजभवन)

[राम और सीता आसन पर बैठे दिखलाई पड़ते हैं]

राम—देवी, धीरज धरो, इतना सोच क्यों करती हो। आपके पूज्य पिता आपही हम लोगों के बहुकालव्यापी विरह को नहीं सह सकते; किन्तु क्या करें,

नित्यकर्म को नियम कठिन जो अति ही भारी।
स्वतन्त्रता द्विजगृही[1]मात्र की हरतु पियारी!
विघन तनक सो परत घने दोसनि उपजावत।
या चिन्ता सों ग्रसित कारमिक[2]चैन न पावत ॥ ८ ॥

सीता—आर्यपुत्र, मैं इसे अच्छी तरह जानती हूं; किन्तु अपने लोगों से बिछुड़ कर कुछ दुःख होता ही है।

राम—प्यारी, आपने जो कहा वह ठीक है। हृदय विदीर्ण करने वाली संसारी माया ऐसी ही प्रबल है, इसी कारण इससे भयभीत हो बुद्धिमान्-जन सब कामनाओं को छोड़ छाड़ कहीं एकान्त वन में जाकर विश्राम करते हैं—

(कंचुकी का प्रवेश)

कं०—भैया रामचन्द्र, (इतना कहके दांतों के नीचे जीभ काट कर) महाराज!

---

१ गृहस्थ द्विज   २ कर्मकाण्डी

राम—(मुसकरा कर) आर्य, तुम पिताजी के पुराने सेवक हो, तुम्हारे मुख से 'भैया रामचन्द्र' ही सम्बोधन अच्छा लगता है, इसलिये तुमको जैसा अभ्यास पड़ रहा है वैसाही कहा करो।

कं०—महाराज, शृंगी ऋषि के यहां से अष्टावक्र जी आये हैं।

सीता—तो उन्हें क्यों रोक रक्खा है।

राम—शीघ्र लेआओ।

(कंचुकी जाता है)

(अष्टावक्र का प्रवेश)

अ०—आपका कल्याण हो!

राम—भगवन, मैं आपको प्रणाम करता हूं; यहां विराजिये।

सीता—मैं भी प्रणाम करती हूं। कहिये जामातृ के सहित हमारी सास और शान्ता देवी कुशल से तो हैं?

राम—बतलाइये, हमारे बहनोई, सोमरस के पान करने वाले शृंगी ऋषिजी का यज्ञ तो निर्विघ्न हुआ चला जाता है, वह और बहिन शान्ता आनन्द से तो हैं?

सीता—कभी हमारा भी स्मरण करती हैं?

अ०—(बैठ कर) क्यों नहीं, देवी, कुलगुरु भगवान वशिष्ठ जी ने आपको कहला भेजा है कि—

विश्वभरनि वसुमतीदेवि१ की तुम हो जाई।
जगत-जनक२सम जनक३ सुभग तव जनक४सुहाई॥

१ पृथ्वी २ ब्रह्मा ३ राजा जनक ४ पिता।

जिन कुल सविता१ वंस-प्रवरतक, हम आचारी।
तिन राजनि की बधू नन्दिनी तुम सुकुमारी ॥९॥
इस कारण और क्या आशिष दें, बस भगवान तुम्हें
वीर-जननी बनावें, यही हमारी आन्तरिक कामना है।

राम—इस के लिये हम अत्यन्त अनुगृहीत हैं क्योंकि—

निरखि अर्थ कहैं निज बैन कों,
सकल लौकिक-साधु बनाइकैं।
विमल-मानस आदि-कवीनु के,
बचन कों अनुधावत२ अर्थ है ॥१०॥

अ०—और भगवती अरुन्धती, देवी शान्ता, महारानी माताओं ने बारम्बार यह कहला भेजा है कि आजकल गर्भिणी सीता का मन जिस किसी वस्तु पर चले वह अवश्य ही उपस्थित की जाय, उसमें कदापि देर न करना।

राम—जो यह कहती हैं, सो सब किया जाता है।

अ०—तुम्हारे नन्दोई और माताओं ने यह कहला भेजा है कि बेटी, तू पूरे दिनों से है इसी कारण तुझे हम अपने साथ नहीं लाये, वत्स रामचन्द्र को भी तेरा जी बहलाने के लिये वहीं छोड़ दिया है इसलिये हे आयुष्मती! लाल से जब तेरी गोद भरी पूरी होगी तभी तुझ से मिलेंगे।

राम—(हर्ष और लाज से मुसकरा कर) ऐसा ही हो, कहिये, भगवान वशिष्ठजी की कुछ मेरे लिये भी आज्ञा है?

---

१ सूर्य २ पीछे चलता है।

अ०—उसे भी सुनिये—

ऋषि शृङ्ग के मख[1] में यहां, लागे सबै हम आज।
है बालमति अब ही तिहारी, राज को नव काज॥
तुव धर्म नित्य प्रजानुरंजन[2], निज प्रमाद[3] विहाइ।
तज्जनित[4] यश धन प्रचुर ही, रघुवंस की प्रभुताइ॥११॥

राम—भगवान मैत्रावरुणि की जो आज्ञा।

मोह, दया, सुख, सम्पदा, जनक सुता वरु होहि।
प्रजा हेत तिनहु तजत विथा न व्यापहि मोहि॥१२॥

सीता—आर्यपुत्र, इसी लिये आप रघुकुल के धुरन्धर कहलाते हैं।

राम—कोई है? अष्टावक्र जी को लेजाकर विश्राम कराओ।

अ०—(उठ कर और घूमकर) अहा! यह तो कुमार लक्ष्मण आरहे हैं। (जाता है).

(लक्ष्मण का प्रवेश)

ल०—महाराज की जय हो, उस चित्रकार ने, जैसे कि हमने कहा था वैसे ही आप के चरित्र के चित्र उन दीवारोंपर चित्रित किये हैं, उन्हें चल कर देख लीजिये।

राम—(आपही) उदास जानकी को प्रसन्न करना कुँवर खूब जानते हैं, (प्रगट) अच्छा, तो वह कहां तक बन गया है?

ल०—महारानी की अग्निशुद्धि तक।

राम—हैं हैं, ऐसा मत कहो!

---

१ यज्ञ २ प्रजा को प्रसन्न रखना ३ आलस्य ४ उससे उत्पन्न

अति पुनीत१ सिया निज जन्म सों,
तिहि भला पुनि पावन१ को करै।
लहिसकै कहुँ अन्यपदार्थ सों,
अनल, तीरथ-तोय२ विशुद्धता ॥१३॥

हे यज्ञभूमि से उत्पन्न हुई देवी! क्षमा करना, यह तो जन्म भर का कलंक तुम्हारे सिर हो चुका; तुम्हारी पवित्रता के विषय में मुझे रत्ती भर भी संशय न था, परन्तु—

कुल कीरति रूप चहैं धन जे,
ते महीप प्रजा को करैं मनभावत।
यहिसों मम बैन कहे जो अजोग,
सही तुष जोग अबै लौं सतावत।
नित पुष्प सुगन्धित को जग माहि,
सुभायहि सों सब सीस चढ़ावत।
बनि कै निरमोही न कोऊ जनो,
तिन को दलि पाइनु के तर दावत ॥१४॥

सीता—आर्यपुत्र, इन बातों को जाने दीजिये, होना था सो होगया। आइये, अब आप के चित्र को देखें।

(सब जाते हैं)

स्थान राज-मंदिर, चित्रशाला।

(राम लक्ष्मण सीता आते हैं)

ल०—यही तो हैं चित्र।

सीता—(देख कर) देखो जी, ये कौन हैं जो ऊपर पास२ खड़े हुए आर्यपुत्र की प्रार्थना सी कर रहे हैं ?

---

१ पवित्र २ जल

ल०—महारानी, ये मंत्र सहित जृम्भकास्त्र हैं, ये भगवान कृशाश्व मुनि से विश्वामित्र जी को मिले और उन्होंने ताड़का के वध करने के समय से महाराज को देदिये हैं।

राम—प्यारी, इन दिव्यास्त्रों को प्रणाम करो।

वेद, विप्र रच्छा निमित, विधि१ आदिक ऋषिवृन्द।
कियो सहस्रधिक बरस लों, तप अतिकठिन अमन्द॥
अपनो ही तब तेजबल, परम प्रभासित स्वच्छ।
इन अस्त्रनि के रूप में, तिन देख्यो प्रत्यच्छ॥ १५॥

सीता—अच्छा, मैं इनको प्रणाम करती हूं।

राम—अब से ये सर्वथा तुम्हारी सन्तान की सेवा में रहेंगे।

सीता—मुझ पर बड़ी कृपा हुई।

ल०—यह मिथिलापुरी का दृश्य है।

सीता—अहा! यह तो आर्यपुत्र का चित्र कढ़ा हुआ है। काकपक्षों२ से श्रीमुख-मंडल की छवि और भी अनोखी हो गई है, प्रफुल्ल नवल नील कमल सा श्याम इनका सुन्दर सुकुमार पुष्ट शरीर कैसा शोभाभिराम है, वह देखो, पिताजी बड़े आश्चर्य के साथ, सहज ही में शंकर का शरासन तोड़नेवाले इन महाराज के मृदुल मंजुल स्वरूप को इकटक निहार रहे हैं।

ल०—महारानी, देखिये २

सब पितु निज प्रोहित निपुन, सतानन्द के संग।
सजन वाशिष्ठादिकन को, पूजत सहित उमंग॥ १६॥

राम—ये देखने योग्य है।

१ ब्रह्मा २ जुल्फ़

प्रिय न काहि रघुजनक को, कुल सम्बन्ध पवित्र।
करता धरता जहँ सुभग, आपुहि विश्वामित्र ॥ १७ ॥

सीता—और देखिये, ये चारों भाई सगुन सायत से मुण्डन करा-कर विवाह का कंकन बांधे उपस्थित हैं—अहा! ऐसा जान पड़ता है मानो हम लोग जनकपुर में बैठे हैं और यह वही समय वर्त रहा है।

राम—सुमुखी! वरतत समय यह, होत वही परतीत।
गौतम-देव-प्रदत्त१ जय तेरो पानि२ पुनीत ॥
कंकन-भूषित जनु महा-उत्सव को अवतार।
ग्रहन करत प्रफुल्लित कियो, मोकों बारहिंबार ॥ १८॥

ल०—देखिये ये आप हैं, ये श्री माण्डवी हैं और ये वधू श्रुतिकीर्ति हैं।

सीता—और यह दूसरी कौन हैं?

ल०—(लज्जा से मुसकरा कर आपही आप) महारानी सीता अब उर्मिला को पूछ रही हैं, सो किसी बहाने यह बात उड़ानी चाहिये। (प्रगट) श्रीमती, देखने योग्य इधर है, आइये, भगवान परशुराम जी के दर्शन कीजिये।

सीता— (भ्रम से में पड़कर) इन के देखने से तो भय लगता है।

राम—ऋषि महाराज को नमस्कार है।

ल०—महारानी, देखो२, यह महाराज ने ऋषि के मार.........

राम—(आँख से बर्जते हुये) अजी, अभी तो बहुत देखने को पड़ा है, और ही कहीं से दिखलाओ।

---

१ दिया हुआ २ हाथ

सीता—(स्नेह और आदर से देख कर) आर्यपुत्र, इस विनय बड़ाई से ही आप की शोभा है।

ल०—लीजिये, हम सब अयोध्या में आ पहुँचे।

राम—(आंसू भर कर) हा! मुझे स्मरण है, भलीभांति स्मरण है।

ब्याहे जब सब भाइ, अछत१ तात सुखप्रद घरन।
मुदित दुलारति माइ, कहां हमारे ते दिवस ॥ १९ ॥

और तभी की ये जानकी हैं।

छिटकीं जिह गोल कपोलनि पै,
बिखरीं अलकैं झलकैं धुँघरारी।
रद२ कुन्दकली सम वारी३सी बैस४की,
भोरी धरैं मुख पै छबि प्यारी।
सुठि देह सुभाइ-विलास भरी,
शशी की खरी जीति लई उजियारी।
निज लोल कलोलनि डोलनि सों
मममायनु मोद बढ़ावनहारी॥

ल०—और देखो, यह मन्थरा है।

राम—(बिना उत्तर दिये और दूसरी जगह दिखा कर) प्यारी वैदेही,

शृङ्गवेरपुर में यही, यह खिरनी को वृच्छ।
प्रिय निषादपति सों यहीं, भयो समागम अच्छ ॥२१॥

ल०—(हँस कर आपही आप) देखो, महाराज ने मझली माता का वृत्तान्त सब छोड़ दिया।

सीता—देखिये, यहां हम लोगों की जटायें बांधी जा रही हैं।

ल०—राजपाट दै निज सुतनि, त्यागि जगत जंजाल।
वृद्ध समय बन को गये, सूरज बंस-भुआल५ ॥
यही अमल आरण्य६ व्रत, पावन पुण्य समाज।
बाल काल ही में धर्यो, तुमने श्री महाराज ॥२२॥

---

१ उपस्थित, २दांत, ३छोटा, ४आयु, ५राजा, ६वानप्रस्थ

सीता—ये विश्व की वन्दना योग्य पुण्यसलिला भागीरथी बह रही हैं।

राम—(चित्र देख कर) माता भागीरथी, आप रघुकुल की कुल देवी हो, मैं प्रणाम करता हूं —

खोजत सगर सुत यज्ञ-हय[1]
महि भेदि, पातालहिं गये।
मुनि कपिल-कोप कराल सों,
जरि छार सब छिन में भये।
अति कठिन तप तपि तब भगीरथ,
सलिल[2] अघहर[3] लाइ कें।
उद्धार कियो पुरखान को
भगवति! दया तुव पाइकें॥२३॥

सो, हे जननी, आप, अरुन्धती के समान बधू सीता पर सदा स्नेहमयी दृष्टि रखना।

ल०—यह वही श्यामवट है जो भारद्वाज के बतलाये चित्रकूट के मार्ग में कालिन्दी तट पर मिला था।

सीता—आर्यपुत्र, क्या इस प्रदेश का भी आप को स्मरण है?

राम—भला, यह कैसे विस्मरण हो सकता है!

अब मारग के श्रम व्यापन सों, सिथलाइ कें आलस भोइ गई।
मिसिली मुरझाई मृनालिनि[4] सी, बलहीन पसीननु-मोइ गई।
कछु मेरे तबै परिरम्भन[5] सों, खुठि-अंग-हराहरि[6] खोइ गई।
सुख मानि प्रिया! यहँ वाही घरी, हियरा लगि मेरे तू सोइ गई॥२४

ल०—अब यहां से विन्ध्याचल के वन का आरम्भ हुआ है, वह देखिये विराध के संग आपका संग्राम हो रहा है।

---

१ अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा, २जल, ३पापनाशक, ४कमल की डंडी, ५ आलिंगन, ६ थकावट।

सीता—इसे रहने दीजिये, वह देखिये, धूप से बचने के लिये आर्यपुत्र ताड़ के पत्तों का छाता लगाये हम लोगों के साथ दक्षिणारण्य में प्रवेश कर रहे हैं।

राम—गिरि-निरझरनी-तीर यह, वही तपोवन पुंज।
यतिनु-आसरम ढिग जहां, ठौर ठौर द्रुम-कुंज॥
आतिथेय१ अति शांति प्रिय, निवसत यहां गृहस्थ।
खाय मुठी भर भात जो, नित राखत चित स्वस्थ॥२५॥

ल०—देखिये, जनस्थान के बीचोंबीच सघन द्रुम कुंजों के कारण संतत शीतल श्यामल अरण्य से घिरा हुआ और गोदावरी की कलकल ध्वनि से प्रतिध्वनित गुफा वाला यह प्रस्रवणाचल है, बरसते हुए बादल-दल की शोभा से इसकी घनश्यामता और भी बढ़ गई है।

राम—सुरति सुतनु! उन दिननु की, तिहि गिरि पै सौमित्र२।
किये दोउ हम मुदित अब, सेवा विरचि विचित्र॥
सुरति३ सरस तरुनी तहां, गोदावरि की है न?
सुरति कहो तिह निकट को, नित विचरन सुखदैन॥२६॥
और—
संसर्ग अति लहि हम मिलाये, शुभ कपोल कपोल सौं।
दृढ़ पुलकि आलिंगन कियो, मुकलित यव भुज लोलसों॥
कछु मन्द बानी सन विगतक्रम, करत तोसों भामिनी।
गये बीति चारहु पहर, पै नहिं आत जानी यामिनी४॥२७॥

ल०—यह पंचवटी में सूर्पणखा है।

१—अतिथि सत्कार करने वाला, २ लक्ष्मण, ३ याद, ४ रात्रि।

सीता—हा ! आर्यपुत्र! बस यहीं तक आपके दर्शन होंगे !!

राम—प्यारी ! वियोग से इतना क्यों डरती हो, यह तो चित्र है।

सीता—कुछ भी हो, दुर्जन से दुख तो होता ही है।

राम—हाय ! जनस्थान की बात सों ऐसी जान पड़ती है मानो अभी हो रही हो।

ल०—रचि कनक छलमृग राछसहिं, जो कछु कर्‍यो दुखकंधमैं।
भारी कर्‍यो प्रतिकार[1] ताको, हाय ! तउ सालत[2] मनै॥
अरु सीय हित तुम विकल क्रन्दन[3], जो विजन[4] बन मैं कियो।
सुनि ताहि कों पाखानहू[5] रोवत फटत वज्जुर हियो !! ॥२८॥

सीता—(आंसू भर कर) हा ! देव रघुकुल-आनन्दकन्द ! इतना दुख आपको मेरे ही लिये झेलना पड़ा था !!

ल०—(सान्त्वना देने के अभिप्राय से देख कर) आर्य ! यह क्या है ?
तुव नयन सन टपकत टपाटप यह लगी अँसुअन झरी।
बिखरी खरी भुअ पै परी जनु टूटि मोतिन की लरी।
रोकत यदपि बल सों बिरह की वेदना उर तउ भरै।
जय अधर नासा-पुट कँपहिं अनुमान सों जानी परै॥२९॥

राम—लाल !
तलतो सिया-बिरहाग्निनी[6] बिकराल कैसी ह्वै रही।
पै वैर अपनो लैन के हित सकल मैं सहजाहिं सही।
अब चित्र देखन सों वही पुनि जगि उठी भभकाइ कै।
हिय-मरम-घाय[7] समान पीड़ा देति उर उपजाइ कै॥३०॥

---

१ बदला, २ छेदता है, ३ रोना, ४ निर्जन, ५ पत्थर, ६ सीता के विरह की अग्नि, ७ जख्म।

सीता—हा धिक् २ ! उद्वेग के विपुल हो जाने के कारण मुझे ऐसा सूझ पड़ता है मानो आर्यपुत्र से फिर मेरा वियोग हो गया हो ।

ल०—(आपही आप) अच्छा तो इनका ध्यान और कहीं लेजांय । (चित्र देख कर प्रगट) मन्वन्तर समकालीन अतिप्राचीन अपने पूज्य गृद्धराज जटायु के विक्रममय चरित्र का उदाहरण स्वरूप यह चित्र देखिये ।

सीता—हा तात ! अपूर्व पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ आपका अपत्यस्नेह सराहनीय है ।

राम—हा तात ! काश्यप ! पक्षिराज ! पुण्यतीर्थ-स्वरूप ! आप के समान साधु महात्मा फिर कहां मिलेंगे ।

ल०—यह जनस्थान के पश्चिम में कवंध दानव के रहने का स्थान चित्रकुंजवन नाम दण्डकारण्य का भाग है—यह ऋष्य-मूकपर्वत पर मतंगमुनि का आश्रम है, यह श्रवणानाम सिद्ध-सिवरी और यह वही पम्पा नाम का सरोवर है ।

सीता—अरे ! यहां तो आर्यपुत्र क्रोध और शोक से अधीर होकर मेरे लिये उन्मुक्त-कण्ठ से रोये थे ।

राम—देवी ! यह बड़ा ही रमणीय सर है ।

यहि मल्लिकजाति के हंस महामृदु बोलत जोबन के मद छाये ।
निज पंख सों दीर्घ मृनालनु के सित कंज१ मनोहर मंजु कँपाये ॥
कछु जैसे ढरे औ नवीन भरे अँसुआन के बीच में औसर पाये ।
इत हेर्यो जबै जब ता पल में लगे उत्पलनील२ किधौं लहलाये ३१॥

१ सफेद कमल २ नीले कमल

ल०—ये महाराज हनूमान जी हैं ।

सीता—बहुत दिनों के शोकसागर में डूबे हुए लोगों का उद्धार कर अत्यन्त उपकार शील निस्संदेह ये महाभाग मरुतनंदन हैं

राम—अंजनि मन रंजन बिपुल, महावाहु बलवान।
जग अरु हम जिनके ऋनी, ते यह श्री हनुमान ॥३२॥

सीता—लाल ! इस पर्वत का क्या नाम है जिसके कुसुमित कदम्बों पर बैठे मयूर नृत्य कर रहे हैं; और जहां वृक्ष के नीचे, मूर्छित दशा में फीकी कान्ति वाले आर्यपुत्र, जिन का केवल प्रभाव-सौन्दर्य शेष रह गया है और जिन्हें रोते हुए तुम सम्हाल रहे हो, दर्शाये गये हैं ।

ल०—अरजुन पहुप सुगन्धित गिरि सो माल्यवान जिहिनामा।
जासु सिखर आश्रयित१सजलघन-श्याम हृदय अभिरामा॥

राम—बिरमौ विरमौ तात ! कहोजनि, सुनन हेत बलनाहीं।
लगत मनहुँ सिय-विरह-वेदना सालति पुनि उरमाहीं॥३३॥

ल०—यहां से आगे स्वयं आर्य्य के और कपिराक्षसों के असंख्य अद्भुत कार्य क्रम पूर्वक दिखाये गये हैं। किन्तु जान पड़ता है कि महारानी थकगई हैं, इस कारण निवेदन है कि आप कुछ बिश्राम कर लीजिये ।

सीता—आर्यपुत्र ! इस चित्रदर्शन से मुझ गर्भिणी की एक इच्छा हुई है कहिये तो कहूं ।

१ ठहरा हुआ

राम—अवश्य कहो।

सीता—मेरे मन में आती है कि एक बार फिर उन सघन सुंदर बनों में बिहार करूं, और भगवती भागिरथी के पवित्र निर्मल शीतल गम्भीर नीर में खूब जी भर कर गोते लगाऊं।

राम—भैया लक्ष्मण !

ल०—महाराज !

राम—देखो अभी तो गुरुजनों की आज्ञा मिली है, कि गर्भिणी की जो इच्छा हो, पूर्ण कर देना सो तुम जाकर एक उत्तम रथ ले आओ जिस में इन्हें हाल न लगे।

सीता—महाराज ! आपको भी साथ चलना पड़ेगा।

राम—हे कठोर हृदयवाली! भला यह भी क्या तुम्हारे कहनेकी बातहै

सीता—बस, ऐसी ही बातों से आप मुझे बहुत प्रिय हैं।

ल०—जो महाराज की आज्ञा।

(जाता है)

राम—प्यारी ! आओ इस खिड़की के पास विश्राम करलें !

सीता—अच्छा मैं भी घूमते २ थक गई हूं और इस कारण मुझे भी नींदसी आ रही है।

राम—तो आओ मेरे सहारे से सोजाओ।

बहु राछस चित्र बिलोकन सों, भयभीत कछू काल कम्पन पाई।
श्रमसीकर१ मंजु वशीकर२ के कनिकान३ सों जासु बढ़ी रुचिराई।
जनु इन्दु मयूख४ विचुम्बित सीतल चन्द्रमनीनु को हार सुहाई।
निजबाहु वही मम कंठ में डारि, करौ सियराम प्रिया सुखदाई २४।

१ पसीना २ वश में करने वाला ३ बूंद ४ किरण

(पास बैठकर आनन्द से).

अस जल परसत अंग तुव, सूझ न परत विचार।
मोह लपट्यो अटपटो, उपजत मनोविकार॥
सुख है अथवा दुःख सो, निहचै[1] बैठति नाहिं।
मद, प्रबोध[2] निद्रा किधों, विष छायो तन माहिं॥
डारि कबहु भ्रम भँवर यह, चेतहि देत भ्रमाय।
अरु कबहू करि ताहि थिर, देत प्रमोद जगाय॥
ग्रहन करन निज २ विषय, इन्द्रिय गन असमर्थ।
अद्भुत गूढ़ रहस्य जे, समुझि परत नहिं अर्थ॥३५॥

सीता—(हंस कर) आपका सर्वदा अनन्य एकरस प्रेम मुझ पर रहा है इससे बढ़कर और क्या कहना चाहिये।

राम—सींचि सनेह के जीवन[3]सों,करै सूखत हीय प्रसून सुखारी।
इन्द्रिनकों नित तृप्ति-सुधा, वसुधातलपै बरसावत भारी।
एतिक बैन विनीत तबै, मुखसोंचव अम्बुजलोचनवारी।
श्रोननि[4]कों सुख दायन ज्यों, जग त्यों मन देत रसायन प्यारी॥३६॥

सीता—हे प्रियम्बद! अब मैं सोऊंगी (सोने के लिये इधर उधर स्थान ढूढ़ती हैं)

राम—अजी तुम क्या ढूंढ़ती हो—

एकसो व्याहघरी सों सदा बन गेहमें नेह निबाहन हारी।
बालपने और यौवन में पुनि तोहि समोद सुआवनवारी॥
जाहि लख्यो सपनेहु नहीं अपने बस मैं कबहूं परनारी।
रामकी ताही भुजाको सिराहनो लेउ लगावहु प्रानपियारी॥ ३७॥

---

1 निश्चय २ जागृत अवस्था ३ जल ४ कान

सीता—(नींद का नाट्य करती हुई) ऐसे ही है, आर्यपुत्र ! ठीक ऐसे ही है।

रा०—क्या प्रियम्बदा गोद में सोगई ? (स्नेह से देखकर)

गृह की यहि गृहलच्छिमी पूरन सुखमा-साज।
अमृत सराई सुभग यहि इन नयनन के काज॥
तन परसत ऐसी लगे जनु चन्दनरसधार।
यहि भुज सीतल मृदुल गल मानहु मोतिन हार॥
कछु न जाको लगत अस जहां न सुख-संजोग।
किन्तु दुसह दुखको भरयो केवल यासु वियोग॥३८॥

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्र०—उपस्थित है महाराज।

रा०—अरे कौन ?

प्र०—दुर्मुख, आपका गुप्तचर।

रा०—(आपही आप) दुर्मुख तो रनवास का सेवक है उसे तो हमने नगर के लोगों का भेद लेने भेजा था (प्रगट) अच्छा आने दो।

(दुर्मुख का प्रवेश)

दु०—(आपही आप) हाय महारानी सीता के विषय में ऐसे जनापवाद को जिसे सपने में भी विचारने से पाप लगता है, भगवान रामचन्द्र से कैसे कहूंगा। बिना कहे बनती भी नहीं, क्या करूं मुझ अभागे का तो काम ही यह है!

सी०—(स्वप्नावस्था में विलाप सा करती हुई) हाय प्यारे आर्यपुत्र कहां हो ?

राम—आहो ! चित्र देखने से जो उत्कण्ठा हुई उसे बढ़ाने वाली मेरी ही बिरह भावना सपने में भी प्यारी को चैन नहीं लेने देती। (स्नेह से सीता के शरीर पर हाथ फेरते हुए)

सुख दुखमें नित एक, हृदय को प्रिय बिराम१ थल।
सब विधि सों अनुकूल, बिसद२ लच्छन मय अविचल।
जासु सरसता सकै न हरि, कबहूं जरठाई३।
ज्यों ज्यों बाढ़त सघन४, सघन५ सुन्दर सुखदाई।
जो अवसर पै संकोच तजि परनत६ दृढ़ अनुराग सत।
जग दुरलभ सज्जन प्रेम अस बड़भागी कोऊ लहत॥३९॥

दु०—(आगे बढ़ कर) महाराज की जय हो।

राम—कहो क्या समाचार लाये?

दु०—सब नगर बासी आपकी बड़ाई करते हैं और कहते हैं कि हमलोग इनके सुखद सुराज्य में बड़े महाराज दशरथ को भी भूलगये।

राम—यह तो बड़ाई हुई, दोष भी तो कुछ कहो जिससे उसके दूर करने का उपाय किया जाय।

दु०—(आंसू भरके) सुनिये महाराज (कान में कहता है)

रा०—हाय ! यह कैसा असह्य बचन वज्राघात है !!

(मूर्छित होते हैं)

---

१ विश्राम २ विशुद्ध ३ बुढ़ापा ४ बादल की भांति ५ घना ६ प्राप्तहोना

दु०—धीरज धरो महाराज धीरजधरो।

राम—(ठंडी सांस भरके)हाय,

हा सिय पर घर बास को, कैसो बुरो चवाउ।
शान्त कियो रचि रचि अतुल,अद्भुत तासु उपाउ॥
अब सो वही कुभाग बस, पुनि पुनि आगत दौर।
कूकर१ काटन जहर सम, फैलि गयो सब ठौर ४०॥

हाय मैं अभागा अब क्या करूं (विचार कर शोक के साथ)

लोकाराधन२ धर्म, सब प्रकार सज्जननु को।
सो पितु पाल्यो पर्म, निज प्रानानि अरु मोहि तजि ४१॥

उसे मैं कैसे दूषित करसकता हूं—अभी भगवान वशिष्ठ जी की भी तो यही आज्ञा मिली है।

जग उत्तम रवि कुल नृपति, सब बिधि परम पवित्र।
जिनि कर अनुकरनीय३ प्रिय, उज्जल साधु चरित्र॥
सो तिह कुल मो जनम सों, भयो मलीन अपार।
जग जिह चलत चवाउ अस, मुहि अधमहिं धिक्कार ४२॥

हा देवी, यज्ञात्मजा, हा निज जन्म-रूप अनुग्रह से वसुन्धरा को पवित्र करनेवाली विदेहवंशनन्दिनी, हा पावक वशिष्ठ और अरुन्धती द्वारा प्रशंसित प्रशस्त पुण्यशीलव्रती,हा पतिप्राणा सीता, हा कठिन महारण्य-वास की प्यारीसखी, हा तात- प्रेमपालिता, हा अल्प किन्तु मधुर मंजु भाषिणी किस कारण तुम्हारे भाग्यने ऐसा पलटा खाया है, क्योंकि—

१ कुत्ता २ लोक सेवा ३ मानने योग्य

तुमहीं सों यह जगत होतु, सिय सबविधि पावन।
पै तुम्हरी बहुं चरचा जग जन करत अपावन॥
हैं तुमहीं सों लोग, पियारी सकलसनाथा।
किन्तु हाय तुम भोगहु दुख जनु निपट अनाथा॥४३॥

(दुर्मुख से) दुर्मुख तुम लक्ष्मण से जाकर कहो कि तुम्हारे नये महाराज राम की यह आज्ञा है (कान में कहते हैं)

दु०—केवल दुर्जनों के कहने से यह आपने क्या करना ठान लिया है। इस से तो आप पर कलंक लगेगा। महारानी अग्नि परीक्षा में भी विशुद्ध प्रमाणित होचुकी हैं, और फिर आजकल तो उनके गर्भ में पवित्र रघुकुल के सन्तान की स्थिति है, यह भी विचार करना होगा।

रा०—अरे चुप, भला प्रजाके लोग दुर्जन किस तरह हो सकते हैं—

निरत १प्रजा-प्रिय भानुकुल, सब प्रकार सुखदाय।
विधि बस मम संसर्ग सों, भयो कलंकित हाय॥
कोरे कोसनु पै भई, सिया-शुद्धि की रीति।
अरे अनोखी भांति सों, को करि है परतीति॥४४॥

बस, तू जा चलाजा।

दु०—हाय महरानी!

(गया)

रा०—हाय मैं निष्ठुर कर्म करने वाला बड़ा निर्दयी हूं।

१ निरंतर

निज बालपने सों सदा ही पली जनकादिक की हिय गोद जई।
उर अन्तर जो कबहूं न कर्‌यो सबभांति सों मोते सनेह छई॥
अब दैकें दगा अपराध बिना तिह सीयकों, हाय ये कैसी भई।
जमराज के आनन दैन चहों जनु मैना कसाई कों सौंपि दई ४५॥

तो फिर हाय, जिसके छूने से भी पाप लगता है, ऐसा मैं अधर्मी, देवी को छूकर भी क्यों दूषित करूं (सीता का सिर धीरे २ उठा कर अपना हाथ खींच के)

भोरी सिया मोहि छांडिदै मैं अति अधम चांडाल हूं।
देख्यो न होगो अस कहूं अरु ना सुन्यो होगो कहूं।
लखि ऊपरी व्यौहार मम, श्रीखण्ड१ के धोखे परी।
दुरभाग बस विष विटपसों अबला वृथा लिपटी अरी ४६॥

(उठकर) हा! आज पृथ्वी लौटगई, राम के जीवन का प्रयोजन नष्ट होगया, अब जगत सूना उजाड़ जंगल सा लगने लगा, यह संसार असार है, शरीर भी अपने लिये बोझ हो गया है, कोई आश्रय भी तो नहीं रहा, किंकर्तव्य विमूढ़ हूं, क्या करूं, कहां जाऊं, अथवा यों कहना चाहिये—

जगत में नित भोगन कों विथा,
बस मिल्यो यह जीवन रामकों।
मरम भेदक प्राननुसों जक्र्यो,
सकत ना कढ़ि बेबस चेतना२ ४७॥

---

१ चन्दन   २ जीव

ल०—ये महाराज हनूमान जी हैं ।

सीता—बहुत दिनों के शोकसागर में डूबे हुए लोगों का उद्धार कर अत्यन्त उपकार शील निस्संदेह ये महाभाग मरुतनंदन हैं

राम—अंजनि मन रंजन बिपुल, महाबाहु बलवान ।
जग अरु हम जिनके ऋनी, ते यह श्री हनुमान ॥३२॥

सीता—लाल ! इस पर्वत का क्या नाम है जिसके कुसुमित कदम्बों पर बैठे मयूर नृत्य कर रहे हैं; और जहां वृक्ष के नीचे, मूर्छित दशा में फीकी कान्ति वाले आर्यपुत्र, जिन का केवल प्रभाव-सौन्दर्य्य शेष रह गया है और जिन्हें रोते हुए तुम सम्हाल रहे हो, दर्शाये गये हैं ।

ल०—अरजुन पहुप सुगन्धित गिरि सो माल्यवान जिहिनामा ।
जासु सिखर आश्रयित१सावनघन-श्याम हृदय अभिरामा ॥

राम—विरमौ विरमौ तात ! कहोजनि, सुनन हेत बलनाहीं ।
लगत मनहुँ सिय-विरह-वेदना सालति पुनि उरमाहीं॥३३॥

ल०—यहां से आगे स्वयं आर्य्य के और कपिराक्षसों के असंख्य अद्भुत कार्य क्रम पूर्वक दिखाये गये हैं । किन्तु जान पड़ता है कि महारानी थकगई हैं, इस कारण निवेदन है कि आप कुछ बिश्राम कर लीजिये ।

सीता—आर्यपुत्र ! इस चित्रदर्शन से मुझ गर्भिणी की एक इच्छा हुई है कहिये तो कहूं ।

---

१ ठहरा हुआ

रा०—देखो तो यह क्या है ?

(फिर नेपथ्य में)

[तपकियो जिनने अति दारुण,
व्रजरसा१ यमुना तट रम्य में।
लवण-त्रासित२ ता ऋषि-पुंजको,
सरन में रघुनन्दन राखिये! ५० ॥]

रा०—अरे क्या अभीतक राक्षसों का त्रास बनाही है ! अच्छा, तो अभी इस कुम्भीनसी के पुत्र को नास करने के लिये स्वनामधन्य शत्रुघ्न को भेजूं (कुछ चलकर और फिर ठहर के) हा देवी, तुम को कैसे अकेली छोड़ूं। भगवती भूतधात्री३! तुम अपनी प्यारी जानकी को देखती रहना तुम्हें सौंपता हूं।

जनक के रघुके वर वंस को,
सतत जो सत मंगलदायिनी।
लहलही लतिका जिह कीर्त्तिकी,
तव सुता यह सोइ वसुन्धरे ॥५१॥

(जाते हैं)

सीता०—(सपने में) हाय प्यारे प्राणनाथ आप कहां हो ! (झट उठकर) हाय २ बुरे स्वप्न से छली जाकर दुख में मैं आर्यपुत्र को पुकार रही हूं, हाय धिक्कार ! हाय धिक्कार ! जो मुझ अकेली को सोते छोड़ वह चलेगये। अच्छा देखाजायगा, फिर मिलने पर जो मैं अपने बस

१ व्रज भूमि २ लवणासुर से दुःखित ३ पृथ्वी

रही तो उन पर बिना कोप किये न रहूंगी। अरे भाई कोई बाहर है ? (दुर्मुख का प्रवेश)

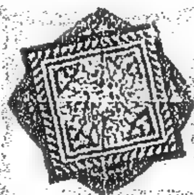
दु०—देवी, कुमार लक्ष्मण ने कहला भेजा है कि रथ सज गया, श्रीमती आकर उस पर विराजमान हो जांय।

सी०—अच्छा, मैं चलती हूं, पर चलने से गर्भभार कँपेगा इसलिये रथ को धीरे २ चलाना।

दु०—इधर से आइये, महारानी इधर से चलिये।

सी०— मेरो हाथ जोरि परनाम—
ऋषि मुनियनकों, जे परकारज करत दया के धाम।
श्री रघुवंसमान्य-कुल-देविनु, जे रच्छत अठजाम॥
आर्यपुत्र-पदपदमनि, जे मम सुख-सर्वस्व ललाम।
सब गुरुजन हित,जिन असीससों पावत सुख अभिराम'१२॥

(सब जाते हैं]



अंक २

अथ बिष्कम्भक

(नेपथ्य में)

[तपस्विनी जी आपका स्वागत है !]

(पथिक के भेष में तपस्विनी का प्रवेश)

त०—अहा, यह तो बनदेवी है जो फल फूल और पल्लवों का अर्घ बनाकर मेरे लिये लाई है ।

(बनदेवी का प्रवेश)

ब०—(अर्घ देकर)

भोगौ यथा रुचि या बनकौं, सब दर्श मिले धनि भाग हमारो ।
पुण्य घनेनु सों पावत हैं, जग पावन सज्जन-संग-सहारो ।
छांहरि¹ मेंबिरमाउ² पियेजल चारु, मुनीनु के जोग पियारो ।
कन्द फराहर³ पाइयेजू, काउ और कौ ना, सब भांति तिहारो ॥१॥*

त०—अहा क्या कहना है ।

---

* निज रुचि अनुसारा भोगहु सारा बन यह धनि मम भागौ
सज्जन सतसंगा धरम प्रसंगा मिलत, सुकृति जो जागौ
तरु छाँह सुहावन मृदुजल पावन, मुनिजन भोजन जोई
फल वा कन्दा सब स्वच्छन्दा, बरतहु निज गिनि सोई

1 छांह 2 ठहरो 3 फलाहार

बहु धा प्रिय वृत्ति बिनै-मधुरी-बतियानिसों चारु बिचार दृढ़ावै
पहँचान अनिन्दित निसनई, मति मंगल मोदमई मन भावै।
रस एक अगार पिछार लसै, छल छिद्र बिना, त्रयताप नसावै।
इमि सज्जन-पुण्य-चरित्र सदां चहुं ओर बिजै बरसा बरसावैं॥२†

(दोनों बैठती है)

ब०—कृपा कर बतलाइये तो आप का शुभनाम क्या है।

त०—मुझे लोग आत्रेयी कहते हैं।

ब०—आर्ये आत्रेयी! अच्छा तो फिर आपका आना कहां से हुआ और इस दण्डकारण्य में बिचरने से श्रीमती का क्या प्रयोजन है?

आ०—या बन में निवसत१ सुभग, अगस्तादि मुनि पुंज।
सुन्दर सुर सों नित करैं, साम-गान की गुंज॥
साम गान की गुंज गूंजि, मंजुल मन मोहत।
सत उपदेस असेस काजजो, जग मधि सोहत॥
तिन सों मैं वेदान्त पढ़न कौ प्रन धरि मनमें।
वालमीकि ढिग सों सिधाइ विचरति या वनमें॥ ३॥

---

† जग जन मनमोहन सविनय सोहन साधु वृत्ति सुठि बानी
मति शुद्धि सयानी मंगलभानी विमल समागम सानी
नित आंख अगारी पीठ पिछारी सरस सरस सुखदाई
अस सुभग सप्रीती सज्जन रीती अकपट विमल सुहाई २

१ रहते हैं

व०—अजी जब और ऋषी मुनी तो वेदका पारायण करने के लिये उन प्राचीन ब्रह्मज्ञानी वाल्मीकि जी की शिष्य रूप से सेवा करते हैं, फिर कहिये आप के इतनी दूर आने का क्या कारण है ?

आ०—वहां पढ़ने में बड़ा विघ्न होताहै,इसलिये इतनी दूर आना पड़ा।

व०—सो कैसे ?

आ०—वहां किसी देवीने मा का दूध छुटतेही अत्यंत विचित्र शैशव अवस्था के दो बालक लाकर उन महात्मा के अर्पण किये, जिनको देख ऋषियों का ही नहीं वरन सम्पूर्ण चराचर मात्र का मन स्नेह से मुग्ध होजाता है।

व०—आप उनका नाम जानती हैं ?

आ०—उस देवीने उनका नाम 'कुशलव' बतलाया और साथही साथ उनका प्रभाव भी जतादिया था।

व०—कैसा प्रभाव ?

आ०—गुप्त मंत्र सहित जृम्भकास्त्र उनको जन्महीसे सिद्ध हैं।

व०—यह तो बड़े आश्चर्य की बात है !!

आ०—भगवान वाल्मीकि जी ने धाय का काम आप अंगीकार कर उन दोनों को पाला पोसा, और मुंडन संस्कार कराके अभी

सावधानी से उन्हें, तीनों वेद छोड़कर सब विद्या पढ़ादीं। फिर गर्भ के ग्यारहवें वर्ष लगते क्षत्रियोचित विधि से उन्हें यज्ञोपवीत देकर शेष तीनों वेद भी पढ़ा दिये, उन की बुद्धि बड़ी तीव्र और धारणा शक्ति अत्यन्तही प्रबल है उन के साथ भला हमारा किस प्रकार निर्बाह हो सकता है, क्योंकि—

वितरन गुरु इक सम करत, बुध१ मूरख कों ज्ञान।
करत न, हरत न, कछुक तिन बोध शक्ति परिमान॥
किन्तु समय परिणाम के, अन्तर विपुल लखात।
रहत मूढ़ के मूढ़ इक, अन्य चतुर बनिजात॥
जिमि दिनेस२ समभावसों, नभ में करत प्रकास।
पूरन प्रति थल पर परत, तासु किरन अभ्भास॥
मनि मंजुल समरथ सदा, बिम्ब ग्रहन के माँहि।
पै माटी के ढेल कहुं, द्युतिमय दीसत नाहिं॥ ४॥

व०—बस यही विघ्न था ?

आ०—और भी है।

व०—वह और क्या है ?

आ०—एक दिन मध्यान्ह काल वह महर्षि महाराज नदी तमसा के तीर गये, वहां देखा कि परस्पर विहार करते हुए क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को व्याध ने मारडाला है, उसी समय अकस्मात् ऋषि के मुख से, नीचे लिखे आशय

१ बुद्धिमान २ सूर्य

की स्पष्ट, दोषरहित पूर्वापर सम्बन्धयुक्त मधुर अनुष्टुप् छन्द के रूप में वाग्देवी का प्रकाश हुआ ।

" रति विलास की चाह सों, मदमाती सानन्द ।
क्रौंचनि की जोड़ी फिरत, विहरत जो स्वच्छन्द ॥
हनि तिन में सों एक कों, कियो परम अपराध ।
जुग २ लों तोहि न मिलहि, कबहुँ बड़ाई व्याध" *५

च०—अरे ! यह तो वेद से भी भिन्न नये छन्द कासा आविष्कार है !!

आ०—उसी समय भूतभावन पद्मयोनि भगवान चतुरानन ने शब्द ब्रह्मप्रकाशधारी ऋषि को दर्शन देकर कहा "हे मुनि-पुंगव ! आप को शब्द ब्रह्म के स्वरूप का भलीभांति ज्ञान होगया है, इस हेतु अब कुछ रामचरित रचिये और अपनी दिव्य प्रतिभाकी प्रभा को निर्विघ्न फैलाते हुए आदि कवि की उपाधि को सार्थक करिये । बस यह कह कर वह अन्तर्ध्यान होगये । इस प्रकार मानव समाज में सब से पहले ही पहले श्री वाल्मीकि मुनि ने शब्दब्रह्मबीज से रामायण सरीके सरस इतिहास कल्पतरु को पल्लवित किया ।

च—चलो बड़े हर्ष की बात है अब तो सारा संसार पंडित होजायगा ।

आ०—इन्हीं कारणों से, जैसे कि मैंने आपको बतलाये, विद्याध्ययन में बड़ा विघ्न उपस्थित होता है ।

च०—ठीक है, होता होगा ।

---

* मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः
यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्

आ०—हे कल्याणमयी, मैं भलीभांति विश्राम कर चुकी, अब तो कृपा कर अगस्त जी के आश्रम का मार्ग बता दीजिये।

व०—यहां से पंचवटी में होकर, बस, गोदावरी के किनारे ही किनारे आप चली जाइयें।

आ०—(आंसू भर कर) क्या तपोवन यही है, क्या इसे ही पंचवटी कहते हैं, क्या यही नदी गोदावरी है, क्या इसी पर्वत का नाम प्रस्रवणाचल है, क्या जनस्थान की वन-देवी वासन्ती आप ही हैं ?

वा०—हां जी, हैं तो सब वेही जैसा कि आप कहती हैं।

आ०—बेटी जानकी,

वेही तुव प्रिय बन्धु द्रुमादिक[१] ये सुखदाई।
जिन प्रसंग-वस चलत कबहुँ चरचा मनभाई।
यद्यपि नाम अवशेष[२] मात्र तुव हाय पियारी।
किन्तु इनहिं लखि लगत मनहुँ तुम नयन अगारी॥६॥

वा०—(भय के साथ, आपही आप) "यद्यपि नाम अवशेष मात्र तुव हाय पियारी" इनने क्यों कहा (प्रगट) आर्ये, बतलाओ तो सीतादेवी पर ऐसी क्या विपत्ति पड़ी।

आ०—केवल विपत्ति ही नहीं पड़ी बिचारी को कलंक भी लगा। (कान में कहती है)

---

१ पेड़ इत्यादि २ बाकी।

वा०—हाय २ यह तो दारुण दैव का बड़ा प्रकोप हुआ (मूर्छित होती है)

आ०—अजी धीरज धरो, धीरज धरो।

वा०—हा प्यारी सखी! हा सौभाग्यवती! क्या तेरे भाग में यही बदा था! रामचंद्र! रामचंद्र! रहने दो अब तुम्हारे नाम लेने से क्या है!! आर्ये आत्रेयी, जब उन्हें बन में त्याग कर लक्ष्मण जी लौट आये तब सीता पर कैसे बीती, कहिये यह भी आपको कुछ विदित है।

आ०—नहीं, कुछ नहीं।

वा०—हाय २ वशिष्ठ और अरुन्धती से रक्षित और अधिकृत रघुकुल में, बड़ी बूढ़ी कौशिल्या आदि के जीते जी यह घोर अनर्थ किस प्रकार हुआ।

आ०—तब बड़े बूढ़े तो सब शृंगी ऋषि के आश्रम में गये हुए थे। अब जब कि बारह वर्ष पीछे उनका यज्ञ समाप्त होने पर सब के सब वहां से विदा होने लगे, तब भगवती अरुन्धती ने कहा कि मैं बहू से सूनी अयोध्या में नहीं जाऊंगी और इसका कौशिल्या माता ने भी अनुमोदन किया। इस अनुरोध वश भगवान वशिष्ठने पुनीत वाक्यों से सब को आश्वासन देकर कहा कि चलो सब वाल्मीकि जी के तपोवन में चल कर वास करेंगे।

वा०—तो आजकल महाराज राम क्या कर रहे हैं।

आ०—उन्होंने एक अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है।

बा०—हाय, तो क्या दूसरा ब्याह भी कर लिया ?

आ०—अजी, ऐसा मत कहो, ऐसा मत कहो।

बा०—तो फिर यज्ञ में उनकी सहधर्मिणी कौन है ?

आ०—सीता की स्वर्णमयी मूर्त्ति बनाली है।

बा०—हाय ! बड़े खेद की बात है—,

कुलिश[1]सों हु कठोर अपार है,
मृदु प्रसूनहुँ सों जिनको हियो।
अस अलौकिक जो जन जक्त[2]में,
सकत पाइ भला तिन थाह को? ॥ ७ ॥

आ०—महर्षि वामदेव द्वारा अभिमंत्रित पवित्र अश्व भी छोड़ दिया गया है, और शास्त्र बिधि के अनुसार उसके रक्षक भी नियुक्त हो गये। कुमार लक्ष्मण के पुत्र दिव्यास्त्र-कुशल चतुर चन्द्रकेतु उस चतुरंगिनी सेना के सेनापति निर्वाचित हुए हैं।

बा०—चलो बड़े आनन्द की बातहै कि कुमार लक्ष्मणके भी पुत्र है।

आ०—इसी बीच में एक ब्राह्मण अपने मरे हुए पुत्र को राजद्वार पर पटक छाती पीट२ कर चिल्लाने लगा "हाय अन्याय हो गया ! हाय घोर अनर्थ हो गया !" उसका पुकारना सुन कर करुणामय रामचन्द्र ने विचारा कि बिना राजा के अपराध किये प्रजामें अकाल मृत्यु हो नहीं सकती, इस

1 वज्र 2 संसार

प्रकार अपने को दोषी ठहरा ही रहे थे कि इतने ही में आकाश-वाणी हुई—

शूद्र एक शम्बूक तपत पृथ्वी पै भारी।
तिह सिर छेदन जोग तिहारे, राम! खरारी1!
ताहि मारि अब शीघ्र लोक-मर्याद रखाओ।
दै द्विज बालहिं प्रानदान जग अजस नसाओ॥८॥

इतना सुनते ही तुरन्त खड्ग हाथ में ले, पुष्पक विमान पर चढ़, शूद्र तपस्वी के खोजने के लिये महाराज ने तभी से, सारी दिशा विदिशाओं में भ्रमण करना आरम्भ कर दिया है।

वा०—अधोमुख करके धूम पान करने वाला शम्बूक नामक शूद्र इसी जनस्थान में तप करता है, इसलिये बहुत सम्भव है कि रामचन्द्र फिर कभी इस बन को सुशोभित करें।

आ०—हे कल्याणमयी, अब तो मैं जाना चाहती हूं।

वा०—अच्छा, अब दिन भी बहुत चढ़ आया है। देखिये—

जहां घोंसला-निकुंज आइकें कपोत-पुंज,
खुटक-बढ़ैया थके कूंजन सुनावहीं।
छांहरि2 में डाल जिनकी कुरेदि कीरनि3 कों,
चोंचनु निकारि खात खग दरसावहीं।
जवैहि खुजावें गज गंडथल पींड़निसों,
टपकि घमीले4 जिन कुसुम सुहावहीं।

---

1 खर के शत्रु। 2 साया. 3 कीड़े. 4 धूप से मुरझाए हुए

ऐसे चारु कूलद्रुम[1] फूल बरसाइ मानौ,
गोदावरी पूजि पूजि तासु गुन गावहीं ॥९॥

(इति विष्कम्भक)

——:०:——

[स्थान दंडक वन]

(पुष्पक विमान में बैठे हुए खड्ग हाथ में लिये श्रीराम का प्रवेश)

ऐ हस्त सूधे आज । द्विज सिसुहिं ज्यावन काज ॥
अब यह कृपान सम्हार । करु शूद्र मुनि पै वार ॥
अति दुसहगर्भहिं धारि । चित खिन्न जनक-कुमारि ॥
तन छीन जिहि कल नाहिं । तिहि बिजन वन के माहिं ॥
जो तजत नाहिं सकुचात । ता राम को तू गात ॥
तो मधि कठोर नृशंस । कितसों दया को अंस !! ॥१०॥

(प्रहार करके) अब तो निर्दय हृदय राम के सदृश कर्म हुआ और ब्राह्मण का पुत्र भी जी उठा ।

(शम्बूक का दिव्य पुरुष के रूप में प्रवेश)

दि॰पु॰—जय हो महाराज की जय हो—

जम-दंड हूसों रछत[2]जो नित, दंड तिन मोकों दयो ।
अब जी उठ्यो तासन शिशू यह, विपुल मम वैभव लयो ।
शम्बूक तव पद नवत, माँगत भक्ति भव-भय-हारिनी ।
सत संग में यदि मृत्युहू मिलिजाय, मोक्ष-कारिनी ॥११॥

---

१ किनारे के पेड़. २ रक्षा करते हैं

रा०—दोनों बातें हमारे मन की हुई, अच्छा भाई! तुमने बड़ा तप किया है इसलिये—

है जहँ पूरन आनँद ललाम,
जो परम पुण्य-सम्पत्ति धाम,
अस, ध्रुव प्रकाश जहँ दिव्य व्याप्त,
वैराज लोक हौं तोहि प्राप्त ॥१२॥

श०—आपही के चरणारविन्द के प्रसाद से यह महिमा प्राप्त हुई है, इस में तप का क्या फल है। अथवा तप ही ने यह महदुपकार किया हो, क्योंकि—

जग-नायक ज्ञायक पूज्य प्रभो,
गरुड़ध्वज, शौरि, शरण्य विभो।
प्रिय पावन भावन भक्तिधनी,
जिह लागि करैं मुनि खोज घनी।
इत सो हरि खोजत मोहि भये,
अबुही सत योजन आइ गये।
कहँ शूद्र अधीन मलीन-गती।
कहँ श्रीपति तीनहुँ लोकपती।
अपनाइ कै जो मम शुद्धिकरी।
तप को यह पुण्य-प्रसाद, हरी!
नाहिं तो तजि औध सुराज-मही।
वन दण्डक में तब काज कही ॥१३॥

रा०—क्या यह दंडकवन है (चारों ओर देखकर) हां ठीक—

कहुं सजल शष्य१-श्यामल रसाल,
कहुं सूखो रूखो अति कराल।
कहुं कहुं झरना-छर-छर-निनाद२,
जहँ गूंजि करत दसदिसि सनाद।
उन तीरथ आश्रम गिरि समेत,
सर३ सरित४ गर्भ-कानन५ निकेत६।
पूरब-परिचित सों अपन जोइ,
दीसत दंडक वन यही सोइ॥ १४॥

रा०—हां यह वही दंडक वन है जहां पूर्व निवास करते हुए—

चौदह सहस रनधीर, अति भीम राक्स वीर।
खरदूषणादि कराल, तुमने हने तिहकाल॥ १५॥

स०—तो यह केवल दंडक वन ही नहीं, जनस्थान का भी कुछ भाग इसमें मिला है?

रा०—ठीक ऐसाही है। देखिये, दक्षिण की ओर प्राणी मात्र का हृदय दहलाने वाली, मदोन्मत्त प्रचंड व्याघ्रादि वन जन्तुओं से भरी, यह सघन विन्ध्याटवी उसी जनस्थान पर्य्यन्त चलीगई है।

ये जनस्थान-सीमा महान,
जहँ सघन गहन वन विसमान।
निश्शब्द शान्ति मय कहुं अखंड,
वन-जन्तु नाद सों कहुं प्रचंड।

१ हराभरा २ शब्द ३ तालाव ४ नदी ५ जंगल का भीतरी भाग ६ घर।

के कमनीय कोमल कण्ठ सरीके हरे भरे पर्वत अपनी लहलही छटा छिटका रहे हैं, जो सघन सीतल श्यामल तरुण तरुओं की सुखद शोभा से सर्वत्र व्याप्त होरहा है, और व्याघ्रादि जन्तुओं का उपद्रव न होने के कारण निर्भय विचरते हुए कुरंगों की क्रीडास्थली बना है ।

थाहिं बेतस[1]-बल्लरी पै खग बैठि,
कलोल भरे मृदु बोल सुनावैं ।
तिनसों झरे - पुष्प-सुगन्धिततोय,
बहैं अति सीतल हो तल भावैं ।
फल पुंज पकेनि के कारन,
श्यामल मंजुल जम्बु[2] निकुंज लखावैं ।
उन मैं रुकिकैं करि घोर घनी,
झरनानि के श्रोत समूह सुहावैं ॥ २०

और—

इन खोहनि मैं दलरीछनि को बसि,
जोवन जोर मरोर जतावैं ।
गिरि-गूंज के संग उमंग भरयो,
भयकारी धुनी घनघोर मचावैं ।
कहुं कुंजर सों रुँदि कुन्दरुकी,
कुचिली निज गाँठिन कौं दरसावैं ।
तिनसों कहुं सीतल और कसाय[3],
धुई रस-गन्धि चहूंछितिछावैं २१॥

---

१ बेंत २ जामुन ३ कसैली

रा०—(आंसू रोक कर) अच्छा तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम बिमान पर बैठकर दिव्यलोक को सिधारो।

श०—श्री महाराज, मैं पुरातन ब्रह्मज्ञानी भगवान अगस्तमुनि को प्रणाम करके आपके दिये हुए अक्षयलोक को जाता हूं।

(जाता है)

रा०—ये बन सोई लख्यो पुनि आज,
जहां सुखसों बहुद्यौस बिताये।
भ्रातऔ सीयके संगकरे,
मुनिराजनि के सतसंग सुहाये।
नित फलाहर१ खात रहे,
निज धर्म के पालन में चितलाये।
छोड सबै जग-भोग-बिलासन
के रस सों छन बंचित नाये॥ २२॥

ये गिरि सोई जहां मधुरी,
मदमत्त मयूरनि की धुनि छाई।
या बन में कमनीय मृगानि की,
लौल कलोलनि डोलनि भाई।
सोहैं सरित्तट२ धारि घनी,
जलवृच्छन की नवनील निकाई।
वंजुलमंजु लतानि की चारु,
चुभीली जहां सुखमा सरसाई॥ २३

और—

१ फलाहार २ नदी के किनारे

जो देखनमें दूरिसों, लागत जनु घनमाल।
प्रस्रवणाचल सोइ यह, गोदावरी रसाल ॥ २४

या ऊंचीसी सिखिर पै, गृध्रराज को तात।
रह्यो वास थल जाहिलखि, अजहु जीय पुलकात॥
धुर याहि नीचे परन१ की, कुटी सुहावन छाइ।
वास कियो हमने रुचिर, लछिन सीय सँग आइ॥
लसत सघन श्यामल विपिन, जहँ हरषावत अंग।
करि कलोल कलरव करत, नाना भांति विहंग॥
फल भारनसों झालरे, हरे वृक्ष झुकि आहिं।
झिलमिलाति झांई सुतिन, गोदावरि जलमाहिं॥२५॥

हा ! यह वही पंचवटी है, यहीं अनेक दिन निवास करने के कारण ये प्रदेश हमारे विविध स्वच्छन्द विहारों के साक्षी हैं, यहीं कहीं सिया की प्यारी सखी वनदेवी वासन्ती रहती है। हाय मुझ पर यह न जाने क्या अनर्थ टूट पड़ा, कुछ समझ नहीं पड़ता।

कैधों चिर-सन्तापज२ अति तीव्र विष—रस,
फैलि सब तनमाहिं रोम रोम छायो है।
कैधौं धाय कितहू ते शल्य३ को शकल४ यह,
वेगसों हृदय मधि सुदृढ़ समायो है।
कैधौं कोऊ पुरिस मरम—धाय खाय चोट,
तिराक भयंकर विमोलि हारिआयो है।

१ पर्ण पत्ते २ पुराने संतापसे उत्पन्न। ३·४ बरछे की अनी।

होइ न विरह-शोक, घनीभूत कोऊ दुख,
 करि जाने विकल मो चेतहू भुलायो है ॥ २६ ॥

सो भी मैं अपने पूर्व परिचित स्थानों को देखे बिना नहीं जासकता। (देखकर,) अब तो यहां की अवस्था में कुछ अन्तर हो गया है—

सोहत हो प्रथम जहां पै सरि-श्रोत मंजु,
 तहां अब विपुल पुलिन१ दरसावै है।
विरल२ हो प्रथम विपिन तहां घनो भयो,
 जहां घनो तहां अब विरल दिखावै है।
बहु दिन पाछें विपरीत चिन्ह देखनसों,
 यह कोऊ भिन्न वन शंक जिय आवै है।
जहां के तहां पै किन्तु अचल अचल३ हेरि,
 'सोई पंचवटी' विसवास ये दृढ़ावै है ॥ २७ ॥

हाय यहां से लौट जाने की इच्छा रहते हुए भी पंचवटी का स्नेह मुझे अपनी ओर बरबस खींचता है (करुणा-भरे स्वर में)

बितये बहु दिन यह सियासंग,
 जनु अपने ही घर सह उमंग।
नितनव यहँ की चरचा चलाइ,
 पायो हम दोउन सुख सिहाइ।
अब हाय अकेलो प्रिया हीन,
 आते दुसह बिरह दुसखों मलीन।

१ रेत, बालू २ हलका ३ पहाड़।

यह राम पातकी[1] करि प्रवेश,
देखहि कस पंचवटी प्रदेश।
जो लखत, हाय तौ सिय-वियोग,
उद्दीपत जियमें शोक-योग।
यदि नाहिं लखत, तउ असन्तोष,
सिर कृतघ्नता को चढ़त दोष।
कारन, जो प्रिय को प्रिय महान,
ताको नित चहियतु करन मान।
अब कैसे हु न कोऊ बचाउ,
हाहा नाहिं कछु सूझत उपाउ !! २८

(शम्बूक का प्रवेश)

श०—जयहो, महाराज की जयहो, अगस्त जीने मेरे मुख से श्री महाराज का इस वन में शुभागमन सुनकर कहला भेजा है कि बिमान से आपके उतरते ही मंगलाचार की सामिग्री सजाये, स्वागत करने के लिये अत्यन्त प्रेमपूर्वक, लोपामुद्रा और सब आश्रम वासी श्रीमान की बाट देखरहे हैं, सो हमारा आदर स्वीकार कर सबों का मनोर्थ पूरा कीजिये, पुष्पक विमान बहुत शीघ्र जाता है, अश्वमेध के समय तक तो आप उससे अयोध्या पहुंच सकते हैं।

रा०—महर्षिजी की आज्ञा सिर माथे।

श०—तो पुष्पक को फिर इधर फेरिये।

---

१ पापी

रा०—भगवती पंचवटी ? बड़ों के आज्ञा-पालन करने की शीघ्रता में तुम्हारी यथोचित सेवा किये बिना जो जा रहा हूं, उसे थोड़ी देर के लिये क्षमा करना।

श०—देखिये, महाराज देखिये, यह वही क्रौंच गिरि है—

जहँ बांस-पुंज कुंज कलित कुटीर माहिं,
घोरत उलूक भीर, घोर घुघियाइ कैं।
तासु धुनि प्रतिधुनि सुनि काककुल मूक।
भयबस लेतना उड़ान कहुं धाइ कैं।
इतउत डोलत, सु बोलत हैं मोर, तिन,
सोर सुन, सरप दरप बिसराइ कैं।
परम पुरान अखिंड तरु कोटर मैं,
मारत स्वकुंडली सिकुरि घबराइ कैं॥ २९

और—

जिन कुहरनि[1] गद गद नदति, गोदावरि की धार।
शिखिर श्याम, घन सजलसौं, ते दक्खिनी पहार॥
करत कुलाहल दूरिसों, चंचल उठत उतंग।
एक दूसरी सों जहां, खाइ चपेट तरंग॥
अति अगाध बिलसत सलिल-छटा अटल अभिराम।
मन भावन पावन परम ते सरि-सङ्गम धाम॥ ३०

(जाते हैं)

---

१ कन्दरा

अंक ३

अथ विष्कम्भक ।

(तमसा और मुरला दो नदियों का स्त्रीरूप में प्रवेश)

त०—सखि मुरला, यहां कैसे फिर रही हो ।

मु०—प्यारी तमसा, भगवान अगस्त ऋषि की पत्नी लोपामुद्रा ने मुझे नदी-शिरोमणि गोदावरी के पास यह कहने भेजा है कि तुम जानती हो कि जब से बधू सीता से अलग हुए हैं तब से—

कहत न काऊ सुहृद सौं, बिथा राम गंभीर ।
तासों दिन दिन बढ़ति तिन, गूढ़ सघन मन पीर ॥
यथा धातु पुटपाक में, कोउ जथै धरि जात ।
भीतर ही भीतर जरति, बाहिर कछु न लखात ॥१॥

इस लिये उन सरीकी प्राण प्यारी विदेह कुमारी पर महान् कष्ट पड़ने के सोच और उनके दुसह अथाह वियोग-सन्ताप के कारण रामचन्द्र इन दिनों ऐसे दुर्बल हो गये हैं कि उनको देख कर मेरा हृदय कांपता है । और फिर अब लौटते समय वह पंचवटी में आवेंगे तो वे प्रदेश अवश्य उन के दृष्टि गोचर होंगे जो प्रिया प्रियतम दोनों के स्वच्छन्द विहार के साक्षी हैं । ऐसी दशा में शोक और क्षोभ से स्वाभाविक धीर बीर गम्भीर रामचन्द्रके मूर्छित होने की पद २ पर

आशंका है इसलिये भगवती गोदावरी ! आपको उस समय अत्यन्त सावधान रहना होगा।

अब राम खेद समेत हों,
पुनि शिथिल गत चेतहों।
तब तब कमल-परिमल१ भरी,
सरि-सीकरनु-सीतल२ करी।
मृदु मन्द पौन चलाइयो,
सुधि उनहिं चेत कराइयो ॥२॥

यं०—भगवती का विचार तो प्रेमानुकूल है किन्तु रामचन्द्र के मोह दूर करने का कारण तो पहले ही से विद्यमान है।

मु०—सो कैसा।

यं०—सुनिये, जब लक्ष्मण बाल्मीकि के तपोवन के पास सीता को त्याग कर चले आये, तब वह प्रसव की विपुल वेदना से घबड़ा कर गंगा जी की धारा में कूदपड़ीं। वहीं उनके दो बालक हुए, जिन्हें अत्यन्त अनुग्रह पूर्वक भगवती वसुन्धरा और भागीरथी रसातल को लेगयीं। और मा का दूध छुटते ही देवी जान्हवी ने स्वयं दोनों बालक महर्षि बाल्मीकि के अर्पण कर दिये।

मु०—(आश्चर्य से)

सिय सम जन की विपतिहु, अवरज-जनक लखाय।
बालमीकि, भुवि, गंग से, करत जासु हित आय ॥ ३ ॥

१ पराग, २ नदी के छींटों से ठंडी की हुई।

त०—और अभी सरयू के मुखसे शम्बूक बध वृत्तान्त सुनने के कारण रामचन्द्र के जनस्थान में आने की सम्भावना सुनकर, स्नेहमयी लोपामुद्रा के समान, ऐसे ही भय और शंकासे प्रेरित होकर भगवती भागीरथी सीता समेत किसी गृह-कार्य के बहाने गोदावरी से मिलने आई हैं।

मु०—भगवती भागीरथी का विचार बहुत ठीक है, क्योंकि राजधानी में अनेक लोकोन्नति साधनों की सफलता के लिये सतत-कार्य में मग्न रहने से रामचन्द्र का चित्त बहला रहता है। और अब बिना किसी काम काज के उनका निरन्तर शोकावस्था में पंचवटी आना महा अनर्थकारी होगा, सो बतलाइये सीता देवी ऐसी दशा में उनका किस प्रकार आश्वासन करेंगी।

त०—इसी लिये तो श्री भागीरथी ने सीता से कहा कि "बेटी यज्ञासजा वैदेही, आज चिरंजीव कुशलव की बारहवीं वर्ष गांठ का दिन है; इस हेतु अपने पुरातन श्वशुर, राजर्षि, मनुवंश के प्रवर्तक, पापनाशक सूर्य देव की पूजा निज हाथों के चुनेहुए प्रफुल्लित पुष्पों से करो। हमारे प्रभाव से पृथ्वी पर विचरते हुए तुमको वन की देवियां भी नहीं देख सकेंगी, मनुष्य की तो क्या सामर्थ है।" सो आवश्यकतानुसार सीता उन का आश्वासन कर सकेंगी और उन्होंने मुझ से भी कहा है कि "तमसा, तुम से

सीता का अत्यन्त अनुराग है, इससे तुम इनकी सहचरी हो कर रहना।" सो जैसी मुझे आज्ञा मिली है उसी का पालन कर रही हूं।

मु०—मैं भी यह वृत्तान्त भगवती लोपामुद्रा से निवेदन करदूं मेरी समझ में अब रामचंद्र भी आगये होंगे।

त०—और यह देखो गोदावरी—हृदय से निकलकर—

पीयरी परी ओप१कपोलन की, तन में दुबराई बढ़ी अतिभारी। लटकाए लटैं बिखरी मुख पै, उर सोचति मोचति२ लोचन वारी३। अति दीसति आकुल सोगसनी४, करुना रस की जनु मूरति प्यारी। तनधारी वियोग-बिथा सी किधौं, बन आइ रही मिथलेशदुलारी॥ ४॥

मु०—क्या यह वही हैं।

अति दीर्घ दारुन ताप बस सिय हिय कमल अकुलाइ।
हा विबस विलुलित५ मुग्ध किसलय समगयो कुम्हिलाइ।
दुबरी परी तन पीयरी इमि, कार की लहि घाम।
जिमि केतकीसुम-गर्भगत मृदु पंखुरी अभिराम॥५॥

(जाती हैं)

(इति विष्कम्भक)

(नेपथ्य में)

[बड़ा ही अनर्थ हुआ! बड़ा ही अनर्थ हुआ!!]

---

१ सौन्दर्य आभा २ बहाती हुई ३ आंसू ४ शोक से भरी हुई ५ लुची हुई

(फूल चुनते हुए करुणा और उत्कण्ठा के साथ सुनती हुई सीता का प्रवेश)

सी०—अरे ! ये बोल तो मेरी प्यारी सहेली वासन्ती का सा लगता है।

(फिर नेपथ्य में)

[जो जानकी कर कलित कोमल शल्लकी परणानि सों।
करभक१ पल्यो लहकात निज शुण्डाग्र चंचल वानि सों।]

सी०—(सुनकर) सो उसका क्या हुआ ?

(फिर नेपथ्य में)

[क्रीड़त करिनि सँग कुलिल प्रमुदित परम सो सर में रह्यो।
तिहि मत्त इक मातंग बलसन रूरि लरि मारन चह्यो ॥६॥]

सी०—(घबड़ाती हुई दो चार पद चलकर) बचाओ आर्यपुत्र ! मेरे उस बच्चे को बचाओ (सुधिकर घबराहट से) हाय २ वेही बातें जिन के कहने का स्वभाव सा पड़ गया था अब फिर पंचवटी को देखकर सहसा मेरे मुख से निकलती हैं। हा, आर्यपुत्र !

(मूर्छित होती है)

त०—धीरज धरो बेटी, धीरज धरो—

(नेपथ्य में)

[हे विमानराज ! यहीं पर ठहर जाओ।]

---

१ हाथी का बच्चा.

सी०—(हृदय सँभाल भय और उन्माद से) जल भरे गरजते हुए धाराधर की मधुर गम्भीर धुनि के समान, यह सरस वाणी कहां से आई जिस के कान में पड़ते ही तुरन्त मुझ अभागिनी में जान सी पड़ गई है।

त०—(स्नेह से आंसू भर कर)

कितहुं सों लहि अस्फुट[1] शब्द कों,
कवन हेत सिया अस तू भई।
चकित चंचल औ उत्कण्ठिता,
जिमि ध्वनी घन की सुनि मोरिनी ॥ ७ ॥

सी०—क्या कहा ? माता ! यही कि स्फुट नहीं है, मुझे तो बोल पहिचानने से ऐसा लगा कि स्वयं आर्यपुत्र ही बोल रहे हैं।

त०—सुना तो गया है कि इक्ष्वाकु वंशी राजा श्री रामचन्द्र जनस्थान में शूद्र तपस्वी को दंड देने को आये हुए हैं।

सी०—धन्य २, महाराज अपने राजधर्म में दृढ़ बने हुए हैं।

(नेपथ्य में)

[झर झर झर झरना झरत, जिह गुफानि सब काल।
गोदावरि सरितट मिली, यह सोई गिरिमाल ॥
प्रिया संग बहुतक दिवस, बितये याही ठाम।
द्रुम मृग हु जहं के लगत, मेरे सुहृद ललाम ॥ ८ ॥]

सी०—यह तो आर्यपुत्र ही हैं ! हाय, प्रभात समय के शशि

1 अस्पष्ट।

मण्डल की भांति इन के मुख मण्डल की कान्ति फीकी पड़गई हैं, बिरह से सूखकर शरीर कांटा होगया है, बस गाम्भीर्य्य की झलक मात्र ही शेष बचरही है, इसी से पहचाने जासकते हैं। माता ! मुझे सम्हालना, यह हृदय-विदारक दृश्य अब नहीं देखा जाता !!

(तमसा से लिपट कर मूर्छित होती है)

त०—(सीता को साधकर) धैर्य्य धरो बेटी, धैर्य धरो—

(नेपथ्य में)

[इस पंचवटी के देखने से—

भीतर ही भीतर घुमड़ि, मोह-धुआं घेघोर ।
प्रथमहिं दुख-लौ उठन के, व्यापत सकल सरीर॥ ९॥

हा प्यारी जानकी !]

त०—(आप ही आप) इसकी तो गंगाजी को भी आशंका थी।

सी०—(नेपथ्य वाणी सुनकर) हाय यह क्या होगया !

(फिर नेपथ्य में)

[हाय मेरी दंडक बन की संगिनी! हाय प्यारी विदेह नन्दिनी !....]

(मूर्छित होकर गिरने का सा शब्द होता है)

सी०—हाय धिक्कार है! धिक्कार है! मुझ अभागिनी का नाम लेते लेते निज नील नीरज१ नयनों को बन्द कर आर्यपुत्र अचेत

१ कमल

हो गये हैं, हाय पृथ्वी पर अधीर होके कैसी अशरणावस्था में पड़े हुए हैं, भगवती तमसा रक्षाकरो, रक्षाकरो, किसी तरह इन्हें प्राण-दान दो॥

(चरणों पर गिरती है)

त०—आप तुही कल्यानि उठि, रामहिं चेत कराउ।
तुव प्रिय सुपरस१ करहिंगे, तिन जीवन सदुपाउ॥१०॥

सी०—चाहे जो कुछ हो, आप की आज्ञा का अवश्य पालन करूंगी।

(शीघ्रता पूर्वक जाती है)

(स्थान—जनस्थान)

(साल्हाद सांस लेते तथा सजल नयन सीता से छूए जाते हुए राम पृथ्वी पर पड़े दिखलाई पड़ते हैं, तमसा खड़ी है)

सी०—(कुछ हर्ष से आपही आप) मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि त्रिलोक-नाथ को फिर चेत हो आया।

रा०—(कुछ चेत में आ कर आप ही आप) आहा, यह क्या है!
यह कल्पतरु पल्लवमृदुलकी सुठिकिधौं रसधार है।
किम्वा सुधाकर किरन निचुरयो सुखद सुन्दर सार है।
संतप्त जीवन-विटप हित कै सघन घन बरषा भली।
सरजीवनी२ कैं मूरि यह जासों खिली मो हिय कली॥११॥

---

१ सुन्दर स्पर्श वाले २ संजीवनी

अवसि परसन यह वही कहुं जासु परिचय मैं लह्यो।
सरल, संजीवन, विमोहन मंजु जो मन को रह्यो।
सन्ताप मूर्छा प्रबल को यह तुरत ही विनसाइ कैं।
आनन्द मय कछु और मोहहिं देत तन उपजाइ कैं ॥१२॥

सी०—(भय और करुणा से कांपती हुई पीछे हटकर के) अब मेरे लिये इतना ही बहुत है।

रा०—(बैठकर) क्या करुणामयी सीतादेवी ने मेरे ऊपर अनुग्रह किया है ?

सी०—(आप ही आप) हाय २ तो क्या अब आर्यपुत्र मुझे ढूंढेंगे !

रा०—सम्भव नहीं, तथापि मालूम तो ऐसा ही होता है।

सी०—भगवती तमसा, अब हमें यहां से दूर होजाना चाहिये, नहीं तो आज्ञा विना मुझे अपने पास देख महाराज कोप करेंगे

त०—बेटी, भगवती भागीरथी के वरदान से तुम्हें वन देवियां भी नहीं देख सकतीं, फिर रामचंद्र जी देख लेंगे ऐसी शंका क्यों करती हो।

सी०—हां, यही बात है।

रा०—हाय प्यारी जानकी ! प्राण बल्लभा जानकी !

सी०—(प्रणय पूर्वक कोप करती हुई गद् गद् स्वर से आपही आप) आर्यपुत्र ! आपका यह सब कोरा दिखावा है, आप करते और हैं और कहते और हैं (आंसू भरकर) अथवा हाय! मुझ बज्रमयी मन्दभागिनी का नाम लेले कर पुकारते

हुए आर्यपुत्र के संग, जिनका शुभ दर्शन जन्मान्तर में भी दुर्लभ था, ऐसी दशा में कब उचित है कि मैं निर्दयता का बर्ताव करूं इनका और मेरा हृदय तो एक ही है।

रा०—(चारों ओर निराशा के साथ देख कर) हाय यहां तो कोई नहीं है।

सी०—भगवती तमसा, इन्होंने मुझे अकारण परित्याग भी कर दिया है, पर तो भी इन्हें इस प्रकार देखकर मेरी हृदयावस्था कुछ और ही होरही है, जिसे मैं न जानती हूं और न कह सकती हूं।

त०—बेटी, मैं इसे जानती हूं—

निज-पीतम-प्रेम-समागम की नाहिं आस, उदास भरी दुखिताई। अपराध बिना निरवासित है, तन छीन वियोग-मलीन लखाई। विरहागि विथा सहि भारी अथै, तिहि देखत भेटन को अकुलाई। सुनि के दुख की बतियां पियकी, सरला जियकी छतियां भरिलाई ॥ १३ ॥

रा०—देवी, सरस सीतल तो-कर-परसेवो,
जनु सदेह[1] सनेह प्रसन्नता।
अजहुं मो मन-रंजन जो करै,
कित गई पुनि तू हिय-हारिणी ॥ १४ ॥

सी०—(आप ही आप) यदपि निष्कारण अपने परित्याग किये

---

१ शरीर युक्त

जाने का तीर हृदय में खटकता है, तथापि प्राणनाथ के अगाध स्नेह भरे, आनन्द बरसाते हुये, ये वचन सुनकर मैं अपने जन्म को सार्थक समझती हूं।

रा०—हाय, किन्तु प्रियतमा यहां कहां से आई, यह तो केवल प्रियाचिन्तन के निरतिशय अभ्यास से पैदा हुए राम के मन का भ्रम मात्र है।

(नेपथ्य में)

[हा बड़ा अनर्थ हुआ! हा बड़ा अनर्थ हुआ!!

जो जानकी कर कलित ······(पूर्वार्द्ध सुनाजाता है)]

रा०—(करुणा और उत्कण्ठा से) सो उसका क्या हुआ ?

(फिर नेपथ्य में)

[क्रीड़त करिनि सँग ······(उत्तरार्द्ध सुना जाता है)]

सी०—(आप ही आप) हाय, उसका बचानेवाला कौनहै, किसे भेजूं ?

रा०—कहां है वह दुरात्मा कहां है, जो स्ववधू के संग क्रीड़ा करते हुए प्यारी के गज—शावक पर आक्रमण करता है।

(ऐसा कहकर उठखड़े होते हैं)

(दूसरी ओर से भयातुर बासन्ती का प्रवेश)

बा०—(आप ही आप) क्या महाराज रघुनाथ जी आये हैं।

सी०—(आप ही आप) क्या मेरी प्यारी सहेली बासन्ती है।

बा०—जय हो महाराज की जय हो।

रा०—(पहचान कर)—क्या प्रिया की सखी वासन्ती है।

वा०—महाराज, शीघ्र चलिये जटायुगिरि की शिखर से सीधे हाथ की ओर सीतातीर्थ कि आगे गोदावरी में घुसकर देवी जानकी के पुत्र की रक्षा कीजिये।

सी०—(आप ही आप) हाय, तात जटायु, आज आप के बिना यह जनस्थान सूना सा लगता है।

रा०—(आप ही आप) हाय, वासन्ती के ये वाक्य तो बड़े ही मर्म-भेदी हैं।

वा०—इधर आइये महाराज, इधर।

सी०—भगवती तमसा! क्या सचमुच ही बनदेवियां भी मुझे नहीं देख सकती?

त०—अरी बेटी, मन्दाकिनी देवी का प्रताप सब देवताओं से बढ़ कर है, फिर तुम बार २ क्यों डरती हो!

सी०—तो चलो हम भी पीछे २ चलें।

(सब जाते हैं)

[स्थान—जनस्थान गोदावरी तट]

(एक ओर से राम और वासंती की तथा दूसरी ओर से सीता और तमसा का प्रवेश)

रा०—(आते हुए) भगवती गोदावरी! आपको नमस्कार है।

घा०—बधाई देती हूं महाराज, यह सुन कर प्रसन्न हूजिये कि आप की जानकी देवी का पुत्र स्ववधू सहित जीत गया।

रा०—चिरंजीव, तुम्हारी विजय हो।

सी०—(आप ही आप)अरे यह तो इतना बड़ा हो गया !

रा०—(आप ही आप) देवी, तुम बड़भागिनी हो—

नव कंज कोमल कलित कलिकन१सम दसन२की कोर सों।
झुकि लयालि पल्लव लेतु जो तुव ललति कानन छोर सों।
मद श्रवत वारन३ गन विजेता नवल नित यौवन–छयो।
अब तरुन-बैस-प्रमोद-भाजन पुत्र तुव प्यारो भयो ॥१५॥

सी०—चिरंजीव रहो बेटा, अपनी प्यारी हथिनी के साथ निरंतर सुख भोगो।

रा०—देखो वासन्ती, बच्चे ने अपनी प्यारी के रिझाने में कैसी निपुणता प्राप्त की है।

कौतक सों तोरिकै मृनाल पुंज कोर नीके,
करिनी के मुख माहि मंजुल खवावे है।
फूले कंज तिन सों सुवासित तड़ाग-नीर,
बीच बीच करिकें कलूला, दौरि प्यावे है।
लहकाइ सूंड़ि चारु अम्बुकन४ बिथुराइ,
जैसो मन चाहे वाहि वैसी ही न्हवावे है।
सरल सुनाल वारो नव नलिनी को पात,
गहिकें सप्रेम पुनि छतुरी लगावे है ॥१६॥

---

१ कली २ दांत ३ हाथी ४ छींटे

सी०—भगवती तमसा, जब यह इतना बड़ा हो गया है सो न जाने कुश लव कितने बड़े हुए होंगे।

त०—जैसा यह है वे भी वैसे ही होंगे।

सी०—हा, ऐसी अभागिनी हूं कि मैं न केवल आर्यपुत्र ही से किन्तु पुत्रों से भी अलग हूं।

त०—भाग्य में ऐसा ही बदा था।

सी०—मैंने पुत्र जनके क्या किया जो छोटे २ बिलग कोमल, कान्तिमय, श्वेत दसनावली द्वारा दीप्त कपोल वाले, निरंतर मधुर मनोहर मुसकराते हुए, काकपक्ष (जुल्फें) रखायें मेरे पुत्रों के युगल मुख कमल का आर्यपुत्र ने अच्छे चुम्बन न किया।

त०—भगवान सब भली करेंगे।

सी०—भगवती तमसा, प्यारे पुत्रों का स्मरण करने से मेरे स्तनों में दूध भर आया है और उनके पिता के निकटवर्ती होने से मैं क्षणमात्र के लिये संसारिणी हो गई हूं।

त०—इसमें क्या कहना है, सन्तान तो स्नेहातिशय की पराकाष्ठा तथा माता पिता के परस्पर अन्तःकरण का बन्धन है—

लहि सनेह अनुरूप, जबै दम्पति हिय पावन।
गुरत एक गुन १ आइ दुहुं बिसिसों मन भावन।

१ डोर

निंत अनन्द मय ग्रन्थि अटल अनुपम जो प्यारी।
'मन्दन' कहियत सोइ सुभग सुन्दर सुखकारी ॥१७॥

वा०—महाराज इधर भी देखिये—

नव जोवन जोर उमंग छयो, निज नाचन में जिह उच्छव मारो। चल्हि चाल मनोहर चारु कलोलत, लोल नई नई पाँखन धारो। करि ऊंची सिखाए१ कदम्बपै सोहत, मानो मनोजु को मौर सँवारो। अब नाचिचुके तब कूक अलापत, लागे सिखी२ ये सखीको पियारो ॥१८॥

सी०—(कौतुक से आंसू भर कर आप ही आप) वही है यह वही है।

रा०—आनन्द करो बेटा, आनन्द करो।

सी०—(आप ही आप) ऐसा ही हो।

रा०—तुअ ज्यों ज्यों भ्रम्यो फिरकैयनु लै, प्रिया भौंह चलाय सिहायो करी। कछु मारि दृगंचल चंचल सी, धुतरीन प्रवीन फिरायो करी। कर पल्लव तारी बजायो करी, हंसि तोहि समोद नचायो करी। सुत आज लखाई परयो अबलौं, अबलौं सुधि तेरी सतायो करी ॥ १९ ॥

अहा पक्षियों को भी बड़ी पहचान रहती है—

बिरवा३ यह नीप४ को नीको लसै,
यहूं चारु प्रसून कछूकन छायो।
निज हाथ लगाय प्रिया ने उछाह सों,
दै जल याहि सनेह बढ़ायो।

१ चोटी २ मोर ३ पेड़ ४ कदंब

सी०--(देख के आंसू भर कर आप ही आप)इसे आर्यपुत्र ने खूब पहचाना--

रा०—सियकी सुधि राखतु जानि परै,
जिय में यह मोर पियारी सुहायो।
नित या संग मान नतैती १ कछू,
तिहि पै करे आनि प्रमोद सधायो ॥२०॥

वा०—महाराज यहां पर बैठिये—

यह दीसति चीकनी चोखी शिला, कदली द्रुमसों चहुँ ओरन छाई। सिय संग जहां तुम सोवत हे, बतरात विनोद भरे सुखपाई। अरु बैठि जिन्हैं तृन नूतन दे, तुव प्यारी चरावत चारु सुहाई। अबलों मृग वे चहुं घेरे रहैं, कहुं अंत न बैठत ताहि विहाई ॥२१॥

रा०—अब तो यह देखा नहीं जाता (रोते हुए दूसरी जगह बैठते हैं)

सी०—(आप ही आप) सखी, वासन्ती ! इन्हें दिखाकर तुमने मेरी और आर्यपुत्र की यह क्या दशा करदी। हाय २ यह वेही आर्यपुत्र हैं, वही पंचवटी है, वही प्यारी सखी वासन्ती है, वही विविधि स्वच्छन्द विहारों के साक्षी गोदावरी समीपवर्ती प्रदेश हैं, वेही प्राणों से प्यारे पुत्र के समान पाले पोसे तरु पक्षी मृग हैं, वही मैं हूं; पर हाय

१ रिश्तेदारी

मुझ अभागिनी को दीखते हुए भी यह सबका सब सूना जान पड़ता है। हाय भाग्य के फेर से संसार में कैसा हेर फेर हो गया है।

वा०—सखी सीता तुम कहां हो जो देखती भी नहीं कि राम की क्या दशा हो रही है।

नीलोत्पल१ दल सम नवल तन जासु सुन्दर सांवरो।
नयनोत्सव२-प्रद, लखत रुचि सों नित नयो गुन आगरो।
अति सोच सों व्याकुल बुद्धी परि पीयरो३ दुर्बल बन्यो।
आन्यो परत ना काउ विधि तउ लगत सुन्दरता-सन्यो॥ २२

सी०—(आप ही आप) देखती हूं सखी, देखती हूं।

त०—देखती रहो, अपने प्रियतम को देखती रहो।

सी०—(आप ही आप) हा दैव, ये मेरे बिना, या मैं इनके बिना रहूंगी यह स्वप्न में भी किसे सम्भावना थीं, इस क्षण तो मानो दूसरे जन्म में इन का दर्शन मिला है इसलिये पल भर आंसू रोक कर अच्छी तरह प्यारे आर्यपुत्र को देख तो लूं।

त०—(सप्रेम आंसू भर कर और सीता को छाती से लगा कर)

प्रिय-दरस-सुख अरु विरह-दुख सों, अश्रु अविरल४ ढारती।
तिह रूप-प्यासे विगत-अंजन, नयन निज विसतारती।
तुव मधुर मंजुल मुग्ध हेरनि, दुग्ध-सरि सम पावनी।
सुठि करति अभिसेचन५ पिया को, प्रनय रस सरसावनी॥२३॥

---

१ नीला कमल २ नयनों को आनन्द दायक ३ पीला ४ लगातार ५ अभ्यर्थना।

वा०—मधु बरसावत विपिन-द्रुम देहु सब,

फूल औ फलनि के अरघ मन भाये हैं।

संग में आमोद१ खिले-कंजनु को लैके मंजु,

मोद सों पवन करै बीजना सुहाये हैं।

चहकि चहूंघा पंछी गाओ कल कंठनि सों,

बैतालिक अनु ताल के उमंग छाये हैं।

राजोचित सनमान सजौ सबै क्यों धु आज,

महाराज राम पुनि यहि बन आये हैं॥ २४॥

रा०—सखी बासन्ती, आओ यहां बैठें।

वा०—(बैठ कर आंसू भर कर) महाराज, कुमार लक्ष्मण तो अच्छे हैं।

रा०—(अनसुनी कर के)

कर कमल सों दै नीर, औ नीवार२ नव तृन बिधिसली।

पादप३ बिहंग४ कुरंग५ पोसे चाउ चित जो मैथिली।

तिन देखिकै जिय सोच व्यापत अकथ अति दुखकी कथा।

करि धवहिय फोऊ विदारन, ताल पालत संवेधा॥ २५॥

वा०—महाराज! मैं पूंछती हूं कुमार लक्ष्मण तो कुशल से हैं।

रा०—(आप ही आप) अरे, इस 'महाराज' के कहने में तो बड़ी व्याज स्तुति भरी है, यह तो केवल स्नेह शून्य सम्बोधन है। बस लक्ष्मण की ही कुशल पूछने में इस का कंठ भर आया और नेत्रों से नीर बहने लगा, इस से हो न हो, यह सीता का भी सब वृत्तान्त जान गई है (प्रगट) हां कुमार अच्छी तरह हैं।

१ पराग २ धान ३ पड़े ४ पक्षी ५ मृग।

वा०—हे देव, आप ऐसे कठोर क्यों हो गये।

सी०—(आप ही आप) सखी वासन्ती, ऐसे ताने क्यों मार रही हो आर्यपुत्र से तो सब को ही मीठा बोलना चाहिये, और विशेष कर तुमको जो हमारी प्यारी सखी हो।

वा०—"तुमही जियप्रान सबै कछुहौ तुमही ममदूजो हियो सुकुमारी। तुमही तन काज सुधा-सरिता१ इन नैननि कों तुमही उजियारी"। हियभोरे को योंही लई भरमाइ कें बात बनाय पियारी पियारी। पुनि ता सियकों......

बस मौनभलो, अब होत कहा कहिबे सों अगारी ॥ २६ ॥

(मूर्छित होती है)

रा०—(आप ही आप) पूरा भी न कहने पाई कि मूर्छित भी हो गई—(प्रगट) सखी धीरज धरो, धीरज धरो।

वा०—तो आपने ऐसा अयोग्य कार्य क्यों किया ?

सी०—(आप ही आप) सखी वासन्ती, रहने दो इसमें क्या रक्खा है।

रा०—क्या करूं दुनियां तो मानती ही न थी।

वा०—इस का कारण ?

रा०—वे ही जानें।

१ अमृत की नदी।

त०—(आप ही आप) उलाहना बहुत ठीक है।

वा०—तिहारो जो प्यारो स्वजन निरमोही यदि महा।
　　सिया के त्यागे सों कुजस अति भारी अरु कहा?
　　भला बीती कैसें मृगनयनि पै वा विपिन में।
　　अहो स्वामी दीजे उतर याहि को सोचि मन में॥ २७॥

सी०—(आप ही आप) सखी वासन्ती, तुम बड़ी कठोर हो जो दुखी आर्यपुत्र को और भी दुख दे रही हो।

त०—वह कुछ थोड़ा ही कह रही है, स्नेह और शोक उस से सब कहला रहा है।

रा०—सखी, इसके सिवाय और क्या कहैं—

मृग-सावक१ के से विलोल महा भय-पूरित चकित लोचन धारी। अरु कम्पित गर्भ के भार सों जो अलसाइ रही तनमें अति भारी। मृदुमंजु मृनाल सी कोमल जो नित चंद्रसों जाकी दुचंद उज्यारी। बन बीच काऊ रजनीचर नीच ने सुन्दरी सोई बिनासि कै डारी॥ २८॥

सी०—(आप ही आप) आर्यपुत्र! मैं तो जीती जागती हूं।

रा०—हाय प्यारी जानकी तुम कहां हो।

सी०—हाय २ आर्यपुत्र तो बिलख २ कर रो रहे हैं।

त०—बेटी, दुखिया के पास अपना दुख दूर करने को रोना ही एक मात्र उपाय है क्यों कि—

---

१ बच्चा।

उपटि पूर्ण तड़ाग जबै भरै।
जल निकासन तासु प्रतिक्रिया[1] ॥
विपुल शोक दशा मधि हू तथा।
रुदन धीरज को सदुपाय है ॥ २९ ॥

और विशेष करके राम को तो यह संसार अनेक रूप से दुखदायी हो रहा है।

चित लगाय इत पालिबौ, प्रजा नीति अनुकूल।
उत प्यारी-विरहा-तपनि, कुम्हिलानौ जिय फूल ॥
ताजि तिहिकों अब अपुहि पुनि, करत विलाप बनै न।
जियत अजहुँ, यहिसों प्रगट, रोदन निरफल है न ॥३०॥

रा०—हाय बड़ा कष्ट है !

प्रिय-वियोग छाती फटै, आवति पै न दरार।
काया तजै न चेतनाहि, बेसुधि विकल अपार ॥
जरति, फरति पै भसम ना, दौं लागी तन माहिं।
हृदय विदारत निरत विधि, निरदय मारत नाहिं ॥३१

सी०—प्रिय-वियोग ऐसा ही होता है।

रा०—हे पुरवासियो !

जब राज-मन्दिर में बसत सिय हा तुम्हैं भाई नहीं।
तृनसम तजी बन विजन में तउ मन विथा छाई नहीं।
तिह संग के इन बास-थल ने विकल अब मोकों कियो।
* यहि हेतु रोवन काज चाहतु आज तुव आयसु[2] लियो ॥३२॥

---

* रोवत असरनहिं लखि पसीजत क्यों न तुव बज्जुर हियो।

१ उपाय २ आज्ञा।

ल०—(आप ही आप) शोक सागर का अति गम्भीर और बड़ा अनिवार्य भ्रमर है।

वा०—महाराज, बीती को बिसार कर धीरज धरना चाहिये।

रा०—सखी क्या कहती हो ? धीरज !

बीत गये बारह बरस, बिन सीया सी धाम।
तासु नामतक छु मिट्यो, जियत तऊ यह राम ॥३३॥

सी०—आर्यपुत्र की इन बातों ने मुझे मोह लिया है।

त०—यथार्थ है बेटी—

प्रेम पगे जासों परम, जिय की रुचि सरसात।
दारुन१ सोक समूह सनि, अति अप्रिय दरसात॥
तेरे पिय के ये वचन, मृदु कटु जुगल अपार।
का नहिं ढारत तुव हिये, अमिय गरल की धार॥३४॥

रा०—सखी वासन्ती,

तीखी मनु तिरछी अनी, बरछी की विसलीन२।
का हिय गाढ़ी सोक की, मैंने बिथा सही न॥३५॥

सी०—(आप ही आप) मैं ऐसी मन्दभागिनी हूं कि जिस के कारण बारम्बार आर्यपुत्र को दुख होता है।

रा०—बड़ी धीरता पूर्वक अपने हृदय को थाम लेने पर भी पूर्व परिचित अनेक प्रिय पदार्थों के देखने से दुखका आवेग आज फिर अनिवार्य हो गया है।

---

१ कठोर २ विषैली।

छुभित विचंचल सोक की, हिय में उठति हिलोर।
रोकन तिहि केसेउ किये, जो जो जतन कठोर॥
छायो चित्त विकार, तिनहुँ तोरि अकथित कोऊ।
हरत प्रबल जलधार, जिमि दृढ़ सिकता[1] सेतुकों॥२६॥

सी०—(आप ही आप) आर्यपुत्र का ऐसा दुर्निवार्य दुस्सह दु:खावेग देखकर मेरा हृदय भी इस समय अपना दुख भूल कुछ जड़ित स्थंभित सा हो गया है।

वा०—(आप ही आप) महाराज की बड़ी सोचनीय अवस्था हो गई है किसी दूसरी ओर चित्त बटाना चाहिये (प्रगट) हे देव, अब चिर परिचित जनस्थान के भागों को देख कर अपना मनोरंजन कीजिये।

रा०—अच्छा, यही करें।

सी०—(आप ही आप) सखी जिन्हें मनोविनोद का उपाय समझती है वे उलटे और दुख की आग भड़काने वाले हैं।

वा०—(करुणा से) हे नाथ,

याही लता-गृह तुम प्रिया की बाट हेरी, जो घनी।
गोदावरी तट निरखि हंसनि, ठिठकि रही कौतुकसनी।
आवत, कछुक तुव मलिन मन लखि, भीय-कातर मैथिली।
जोरी जुगल कर कलित कोमल कमल कुडमल[2] अंजली॥२७

---

१ रेत २ कली।

सी०—(आप ही आप) सखी, तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है जो तुम हृदय में लगे मर्म्मभेदी शोक शल्यों को बार २ कुरेद कर मुझ मन्दभागिनी तथा आर्यपुत्र को व्यथित करती हो।

रा०—हे कठोर हृदय जानकी, इन दृश्यों के देखने से यह लगता है कि तुम यहीं कहीं विचर रही हो, फिर मुझ अभागे पर दया न करने का क्या कारण है:—

हा हा प्यारी फटत हृदय यह जगत शून्य दरसावै।
तन-बन्धन सब भये सिथिल से अन्तर-ज्वाल जरावै॥
तो बिन जनु डूबत जिय तम में, छिन २ धीरज छीजै।
मोहावृत१ सब ओर राम यह, मन्द भाग्य का कीजै॥३८॥

(मूर्छित होते हैं)

सी०—हाय २, आर्यपुत्र फिर बेसुध हो गये।

वा०—धीरज धरो महाराज, धीरज धरो।

सी०—(आप ही आप) हा, आर्यपुत्र केवल मुझ अभागिनी के लिये समस्त संसार के मंगलाधार रूप आपका जीवन प्रतिक्षण दारुण संशयावस्था में पड़ रहा है, इससे बड़ी भारी विपत्ति की आशंका उपस्थित हुई है। हाय, अब मैं क्या करूं।

स०—बेटी, घबड़ाने का काम नहीं है रामचंद्र का पुनर्जीवन तुम्हारे ही पाणि पल्लव के स्पर्श से होगा।

१ मोह से घिरा हुआ।

ल०—ये महाराज हनूमान जी हैं ।

सीता—बहुत दिनों के शोकसागर में डूबे हुए लोगों का उद्धार कर अत्यन्त उपकार शील निस्संदेह ये महाभाग मरुतनंदन हैं

राम—अंजनि मन रंजन बिपुल, महाबाहु बलवान ।
जग अरु हम जिनके ऋनी, ते यह श्री हनुमान ॥३२॥

सीता—लाल ! इस पर्वत का क्या नाम है जिसके कुसुमित कदम्बों पर बैठे मयूर नृत्य कर रहे हैं; और जहां वृक्ष के नीचे, मूर्छित दशा में फीकी कान्ति वाले आर्यपुत्र, जिन का केवल प्रभाव-सौन्दर्य शेष रह गया है और जिन्हें रोते हुए तुम सम्हाल रहे हो, दर्शाये गये हैं ।

ल०—अरजुन पहुप सुगन्धित गिरि सो माल्यवान जिहिनामा ।
जासु सिखर आश्रयित १सावनघन-श्याम हृदय अभिरामा ॥

राम—विरमौ विरमौ तात ! कहोजनि, सुनन हेत बलनाहीं ।
लगत मनहुँ सिय-विरह-वेदना सालति पुनि उरमाहीं ॥३३॥

ल०—यहां से आगे स्वयं आर्य्य के और कपिराक्षसों के असंख्य अद्भुत कार्य क्रम पूर्वक दिखाये गये हैं । किन्तु जान पड़ता है कि महारानी थकगई हैं, इस कारण निवेदन है कि आप कुछ बिश्राम कर लीजिये ।

सीता—आर्यपुत्र ! इस चित्रदर्शन से मुझ गर्भिणी की एक इच्छा हुई है कहिये तो कहूं ।

---

१ ठहरा हुआ

रा०—सखी, इस में काहे का प्रलाप है।

ब्याह समय जो गह्यो मुदित-मन प्रथमहिं कंकन-धारी।
चिर-परिचित जिह सुलभ सुधा सी परसनि परम पियारी।

सी०—(आप ही आप) आर्यपुत्र, अभीतक आप वही हैं।

रा०—हिम सम सीतल हीतल१-सुखप्रद मृदुल मंजुमन भायो।
लगत तुही कर लह्यो, ललित जिन लवली दलहिं लजायो॥४०॥

(ऐसा कहकर पकड़ते हैं)

सी०—(आप ही आप) हाय२,प्राणपति के प्रियस्पर्श से मोहित होकर मुझ से चूक हो गई।

रा०—सखी वासन्ती, आनन्द के मारे मेरी इन्द्रियां अपने २ कर्तव्य पालन में शिथिल सी हो गई हैं, मेरे बस की बात नहीं रही है, इससे थोड़ी देर तक इनको हाथ को तुम्हीं थामे रहो।

वा०—(आप ही आप) हाय२, इन्हें तो उन्माद हो गया !

सी०—(सीता जल्दी से हाथ छुड़ाकर दूर हो जाती है)

रा०—हाय अनर्थ हो गया—

मो जड़ कम्पित स्वेद-मय, कर सन२ मन-मुद-दानि।
छिटकि पर्‍यो कित जड़ कँपत, तासु पसीजत पानि॥४१॥

---

१ हृदय २ हाथ से।

सी०—(आप ही आप) हा, अभी इनकी निगाह ठीक नहीं हुई है, ठीक २ वस्तु पहचानने में असमर्थ तथा चकराती सी मालूम होती है- इससे जाना जाता है कि आर्यपुत्र अभी अपने आपे में नहीं आये।

त०—(स्नेह से देखकर आप ही आप)

श्रम-सीकर-कनसों छयी, कांपति औ पुलकाति।
पिय-तन-परस उमंग सों, बेटी अस दरसाति॥
जनु चलि चंचल पवन बस, घन बूंदन के भार।
मुकुलित कलित कदम्बकी, सलित डहडही डार॥४२॥

सी०—(आप ही आप) अरे, अपने आप पर आधिकार न रहने से मुझे तमसा जी के सामने लज्जित होना पड़ा, अपने मन में भला यह क्या कहेंगी कि कहां तो राम द्वारा इनका ऐसा परित्याग, और कहां उन पर इन के हृदय का ऐसा अनुराग।

रा०—(सब ओर देख कर) क्या यथार्थ में नहीं है, हाय, वैदेही तुम बड़ी निठुर हो।

सी०—(आप ही आप)सचमुच मैं बड़ी निठुर हूं, जो प्राणनाथ, तुम्हें ऐसी दशा में देखकर भी प्राण धारण करती हूं।

रा०—देवी ! कुछ तो पसीजो, मुझे ऐसी दशा में परित्याग करना तुम्हारे लिये योग्य नहीं है।

सी०—(आप ही आप) आर्यपुत्र, यह तो आप विपरीत कह रहे हो।

वा०—महाराज, धीरज धरिये, अपनी असाधारण धीरता को काम में लाकर गहरी वियोग विथा में डूबे हुए अपने आपको सम्हाले रहिये-भला यहां मेरी प्यारी सखी कहां !

रा०—(आप ही आप) व्यक्त रूप में जानकी नहीं हैं, होती तो क्या वासन्ती न देखती, तो क्या यह स्वप्न हुआ। रामचंद्र के नैनों में निगोड़ी नींद कहां, जो स्वप्न हो। बस, प्यारी से मिलने का जो निरन्तर ध्यान बना रहता है उसी से पैदा हुआ निःसन्देह यह विकट उन्माद है जो मुझे अनेक कल्पनाओं में डालकर बार २ सताता रहता है।

सी०—आर्यपुत्र की इस दशा का कारण मैं ही वज्र हृदय वाली हूं।

वा०—महाराज,

दसकंध को यह गृध्र-नासित१ लोहमय रथ देखिये।
पुनि तासु खर-भीषन वदन कर अस्थि अग अवरेखिये।
तिह-पंख हनि, रिपु लैगयो नभ-पंथ सों तुव भामिनी।
*आत बिलबिलाती विवस पल पल दमकि,जनु घन दामिनी॥ ३

सी०—(भय से आप ही आप) आर्यपुत्र, तात जटायु को यह दुष्ट मारे डालता है और मुझे भी हरे लिये जाता है, अहिये २ शीघ्र बचाइये।

रा०—(शीघ्र उठ कर आप ही आप) महात्मा जटायु के प्राण को और सीता को हरने वाले अरे पापी! खड़ा तो रह कहां जाता है

---

*पल २ विकल दमकति विपुल जनु नवल घन में दामिनी।
१ जटायु द्वारा नाश किया हुआ।

वा०—हे देव, राक्षसकुल धूमकेतु, अभी तक आपका क्रोध ठंडा नहीं हुआ है।

सी०—(आप ही आप) हाय मैं भी पागल हो गयी हूं।

रा०—यथार्थ में अब के तो यह प्रलाप ही है।

अनुकूल-सुन्दर-जतन-मय, नित-विरह-दुख अपनोदमें१।
बहु धीर-मासन-जनित अदभुत वीर-भाव-विनोदमें।
अविदित-विथा-कर, सिय, विरह तव शत्रुदल-वध लौं रह्यो।
अबकों वियोग अथाह निरवधि जाइ कहु का बिधि सह्यो॥४४

सी०—(आप ही आप) यह निरवधि है तो हाय अब मेरे प्राण कैसे रहेंगे।

रा०—(आप ही आप) हाय क्या करूं,

जहां कपिराज सुगरीव मित्रता विफल,
दसरथ दल बल वानर को भारी है।
कछु न प्रभंजन-कुमार२ की चलति जहां,
जामवान हू की बुधि थकित बिचारी है।
पथ न बनाय सकै बिसकरमा को पूत—
नल, जिह ठाम कीं, अकूत बलधारी है।
गति न लछिन-वीर बानहु ने जानी तहां,
कहां जाय तू समानी हाय प्राणप्यारी है॥ ४५॥

सी०—(आप ही आप) इससे तो पहिलाही वियोग अच्छा रहा।

---

१ मिटाने में २ हनुमान।

रा०—सखी वासन्ती, अब जैसे २ प्रिय पदार्थों का दर्शन होगा वैसे २ राम का कष्ट बढ़ता ही जायगा, मेरे पीछे तुम कब तक रुदन करोगी। हाय, मैं ऐसा अभागा हूं कि मेरा मिलना सुहृदों को भी दुख पहुंचाता है इससे मुझे अब जाने दो।

सी०—(मोह और उद्वेग से तमसा के गले लग कर) तो क्या आर्यपुत्र अब चले ही जायंगे।

त०—बेटी, हृदय संभालो, हमें भी तो चिरंजीव कुशलव की वर्षगांठ का उत्सव करने भगवती भागीरथी के समीप जाना है।

सी०—माता, कुछ तो दया करके ठहरिये और क्षण भर मुझे इन के दर्शन कर लेने दीजिये–हाय फिर मिलना कहां।

रा०—अश्वमेध यज्ञ के लिये मेरी भी एक सह-धर्म-चारिणी…

सी०—(घबरा के आप ही आप) वह कौन है आर्यपुत्र ?

रा०—सीता की सुवर्णमयी मूर्ति है।

सी०—(आप ही आप) यथार्थ में आप स्वनाम धन्य आर्यपुत्र ही हैं, उस परित्यागमयी लाज का कांटा अब मेरे हृदय से दूर हुआ।

रा०—उसी के दर्शन से शोकाश्रु बहाते हुए इन नयनों को शीतल करूंगा।

सी०—(तमसा से) वह धन्य है जिस का आर्यपुत्र इतना आदर करते हैं और जो उन का मनोविनोद कर संसार की सब सुमंगल आशाओं की आश्रय बनी है।

त०—(मुसकराती हुई स्नेह से सीता को गले लगा कर) बेटी इस में तो तुम अपनी ही बड़ाई करती हो।

सी०—(सलज्ज नीचा मुख कर आप ही आप) भगवती तमसा से मैंने अपनी हँसी कराई।

वा०—इस समागम से आप को बड़ा कष्ट हुआ, मैं ही इस शोकोद्दीपन का कारण हुई—और जाने के लिये, जिसमें आपके कार्य की हानि न हो वैसाही कीजिये।

सी०—(आप ही आप) वासन्ती ही अब मेरी बैरिन होगई।

त०—आओ बेटी चलें।

सी०—(कष्ट से) जो आज्ञा।

त०—कैसे चलना हो तुम्हारे तो—

दरसन के प्यासे अड़े, पिया दरस में नैन।
बढ़े बढ़े बहु जतन करि, टारे सोंहु टरें न ॥४६॥

सी—अपूर्व पुण्यों से प्राप्त हुए आर्यपुत्र के चरण कमलों में बारम्बार अनेक प्रणाम है।

(मूर्छित होती है)

अंक ४

अथ विष्कम्भक

(दो तपस्वियों का प्रवेश)

भ०—सौधातकी, देखो आज अनेक अतिथियों के आने तथा उनके सत्कारार्थ यथोचित सामिग्री उपस्थित होनेसे भगवान वाल्मीकि जी का आश्रम कैसा रमणीय लगता है अहा,

चामर सभा के तिन गुनगुनो नीको मांड,
मृग निज हाल-व्यानी हिरनी को प्यावे है।
ताके पीवनसों ज्यादा बचिके रहोजो ताहि,
स्वाद स्वाद पीवत अघाय हुलसावे है।
घीउ मिलि भात रंध्यो ताकी सुठि सोंधी सोंधी,
मंजुल महँक महँकत हिय भावे है।
बेर बेर बेर फल मिले सागकी सुगन्धि,
धाइ धाइ सरसाइ सब ओर छावे है॥ १

सौ०—इन बुड्ढे डढ़ियलों के आने से आजका पढ़ना लिखना तो हो चुका!

भ०—क्या कहना है मित्र, गुरुजनों के साथ तुम्हारा यह अपूर्व शिष्टाचार सराहनीय है!

सौ०—अरे भाण्डायन, इस अतिथि का क्या नाम है जो सब बूढ़े और बुढ़ियाओं में मुखिया सा मालूम होता है।

भा०—धिक् मूर्ख, क्या व्यर्थ हँसी उड़ाता है जानता नहीं कि शृङ्गी ऋषि के आश्रम से अरुन्धती के साथ, महाराज दशरथ की रानी को लेकर महाराज वशिष्ठ आये हैं, फिर भला इस प्रकार क्यों बकता है।

सौ०—हूं! तो वशिष्ठ आये हैं।

भा०—और नहीं तू क्या समझता था।

सौ०—मैंने तो समझा कि कोई व्याघ्र या भेड़िया आया है।

भा०—अरे, जीभ संभाल, यह क्या कहता है।

सौ०—अजी आते ही उसने एक बिचारी बछिया की भेट ली।

भा०—वेद में समांस मधुपर्क देना लिखा है, इस को प्रमाण करने वाले बहुतेरे गृहस्थ लोग श्रोत्रिय अभ्यागत को गोवत्सरी या महोक्ष अथवा महाज भेट करते हैं, धर्म सूत्रकारों का भी यही मत है।

सौ०—तब तो मेरी ही बन पड़ी।

भा०—कैसे?

सौ०—क्यों कि जब राजा जनक आये तो वाल्मीकि जी ने दही और मधु ही का मधु-पर्क दिया, बछिया रहने दी।

भा०—प्रवृत्ति मार्ग वालों के लिये ऋषियों का यह नियम है। महाराज जनक तो निवृत्ति मार्ग में हैं।

सौ०—सो किस प्रकार?

भा०—जबसे उन्होंने सीता देवी का सापवाद परित्याग सुना है तभीसे वाणप्रस्थाश्रम स्वीकार करलिया है। चंद्रदीप तपोवन में तप करते २ उनको तो कई वर्ष बीत गये।

सौ०—तो यहां कैसे आये है?

भा०—अपने पुराने मित्र वाल्मीकि जी के दर्शन करने।

सौ०—समधिन से उनकी भेट यहां हुई या नहीं?

भा०—अभी हाल वशिष्ठजी की आज्ञा से श्रीअरुन्धती कौशिल्या रानी के पास यह कहने गयी हैं, कि उन्हें अपने आप जाकर विदेहराज से भेट करना चाहिये।

सौ०—जब तक ये बड़े बूढ़े आपस में मिलें, तब तक हमभी क्यों न विद्यार्थियों के साथ खेल कूद कर आज की छुट्टी मनावें

(दोनों निकलते हुए)

भा०—देखो, यह पुराने वेद पारंगत राजर्षि जनक यही हैं जो भगवान वाल्मीकि और वशिष्ठजी से मिलकर यहां आश्रम के बाहर वृक्ष की जड़ पर बैठे हुए हैं।

छाँवार की सी तन बदन, जाके दिन अरु रैन।
सीय सोच की दौं[1] लगी, सुलगत चैन परै न॥ २॥

[जाते हैं]

इति विष्कम्भक

---

१ आग

(जनक आते हैं)

ज०---सोचतु सुताकी विषम विपता सदृश मैं चिरकाल ।
हिय होत हा घायल बड़ो, बाढ़ै बिथा बिकराल ।
बीते दिना बहु, तउ उलहि[1] मम शोक क्रोध बिशाल ।
चालि जीय पै जनु तीव्र आरा निरत सालत साल ॥३॥

हाय, यह दारुण दुख मुझसे सहा नहीं जाता । इधर वृद्ध तो अवस्था और असह्य विपता की विथा घेरे हुए, उधर पराक सान्तपन आदि निरन्न निर्जल व्रत करने से, गांठ का रक्त मांस भी सूखगया, किसी काम का रहा नहीं, इस पर भी यह शरीर नहीं छूटता । आत्मघात करके भी छुटकारा कहां ? क्योंकि ऋषियों के कथनानुसार आत्मघाती को अन्ध तामिस्रादि घोर नरक भोगने पड़ते हैं । बरसों होगये फिर भी जैसे २ सोचताहूं, मेरा दुख घटने के बदले प्रति क्षण और भी उग्ररूप धारण करता ही जाता है, इसके शांत होने का लक्षण कोई भी तो नहीं दिखाई देता । हाय, क्या करूं कहां जाऊं, हाय बेटी सीता ! जगन्माता वसुन्धरा के पवित्र गर्भ से तो तू जन्मी, किन्तु न जाने क्या ऐसा भाग्य में लिखा लाई जिसका यह परिणाम हुआ । हा ! इसी लाज के मारे मैं जी खोल कर रो भी नहीं सकता, हाय बेटी हाय !!

1 पैदा होकर

छिनक रोवत पुनि हँसत बिन हेतु, चमकावत भली।
कोमल कली ज्यों कुन्दकी कल कढ़त निज दसनावली।
तुतरात कहि कछु कै। कछु मंजुल मधुर बातें घनी।
शिशुभाव के तुव कंजमुख की, अजहुँ मोकहँ सुधि घनी॥४

भगवती अचला, सचमुच ही तुम बड़ी कठोर हो।

जिह गंग, अग्नि, अरुन्धती, तुमसह महातम जानहीं।
रघुवंश-गुरु-रवि आपु आसन निज प्रतिष्ठा मानहीं।
अस-धाक विद्या सम जनी तुव देखते पावन भई।
निज ता सुता की बिपति तोसों कछू सही कैसे गई॥५॥

(नेपथ्य में)

[इधर आइये भगवती और महारानी आप भी इधर आइये]

अं०—(देख कर) यह तो कंचुकी के पीछे २ भगवती अरुधन्ती आती हैं।

(उठकर) फिर महारानी किसे कहा। (अच्छी तरह देख कर) हाय, क्या यह महाराज दशरथ की धर्मपत्नी प्यारी सखी कौशिल्या हैं? अब इन्हें देखकर कौन विश्वास करेगा कि यह वही है।

कमला-सरिस१ कमनीय अति, दशरथ भवन में जो लसी।
पद 'सरिस१' योजन नहिं उचित, साक्छात् श्री कमलाबसी।
विधि बाम बस अति बिपति लहि, यह हाय कौशिल्या सुही।
जिय-सोच की मारी लगे अब, और की कछु और ही॥६॥

१ तुल्य

यह और एक दूसरा कुदशा का फल है।
मो हित जिह दरशन रह्यो, नित उच्छव को भौन।
अति असह्य सोई लगे, मनहु जरे पै लौन ॥ ७ ॥

(अरुन्धती कौशिल्या तथा कंचुकी का प्रवेश)

अ०---मेरा तो यही कहना है कि आप स्वयं चलकर विदेह राज से मिलें और यही तुम्हारे कुल गुरू की आज्ञा है, इसीलिये मुझे आपके पास भेजा है, फिर पद २ पर आपके आशंकित होने का क्या काम है ॥

कं०---देवी, मैं प्रथना करता हूं कि आप अपने को सम्हाल कर भगवान बशिष्ठजी की आज्ञा का पालन करें।

कौ०---यह सोच कर कि मुझे अभी मिथलाधिपति से भेट करना है मेरे सब दुख एक साथ उमड़े आते हैं, और शोकाकुल हृदय को सम्हालना कठिन होगया है।

अ०---इसमें क्या सन्देह है।

प्रिय-वियोग तरंग हिये उठैं।
दुख न जासु घटै छिन एकहू ॥
स्वजन को लखिकै उमड़े सदा।
सहस धारन सों द्रुत १ धायकै ॥ ८

कं०---हाय प्यारी बहू की यह दशा हो गई अब राजर्षि को अपना मुख कैसे दिखाऊं !

---

१ शीघ्र

अ०—निमिकुल-कमल-दिनेस यह, तुव समधी मिथिलेस।
याज्ञवल्कि जिह हित दियो, विमल ब्रह्म उपदेस ॥९॥

कौ०—यही महाराज के प्यारे मित्र तथा बहू जानकी के पिता राजर्षि जनक हैं, हाय मैं इन से ऐसे अमंगल समय पर मिली जब कि उन में एक भी नहीं है।

अ०—(आगे बढ़ के) भगवती अरुन्धती, मैं सीरध्वज विदेह आपको प्रणाम करता हूं।

सप्तर्षि मधि जो मुकटमनि, तप-तेज-निधि जिन सम नहीं।
सो गुरु वशिष्ठहु तुमनिसों, कृतकृत्य अपुकों मानहीं।
मंगलकरनि तिहुंलोक की, जगवन्दनी, सद्गुनवती।
सुधि मात-श्री सम तोहि, सिर निज नाइ वन्दौं भगवती ॥१०॥

अ०—आपके हृदय में परम ज्योति स्वरूप ब्रह्म का प्रकाश हो और रजोगुण से परे विशुद्ध सत्व गुणरूप तेजोमय सूर्य-देव तुम्हें पवित्र करें।

ज०—आर्यगृष्टि प्रजा के पालन करने वाले महाराज की माता तो कुशल से हैं।

कं०—(आप ही आप) आज तो सचमुच ही हम सब को लज्जित होना पड़ा, देखिये 'प्रजापाल' शब्द इन्होंने किस व्यंग के साथ कहा है। (प्रकट) हे राजर्षि, सीता के परित्यागरूपी शोकोत्ताप से जलती हुई तथा रामचन्द्र मुखचन्द्र के वियोग से महा दुःखित महारानी को ऐसे

क्रोधसंदिग्ध वचन-बाणों द्वारा व्यथित करना तुम्हें उचित नहीं हैं। यह दुर्भाग्य का ही कारण समझिये, जो रामचन्द्र जी से ऐसा अनर्थ बन पड़ा। क्या करें नगरवासी सीता की अग्नि-परीक्षा में अविश्वास रख, बे सिर पैर की बातें उड़ाकर महाराज की अपकीर्ति फैलाते थे।

ज०—अरे हमारी सन्तान को शुद्ध करने वाला अग्नि कौन होता है। हाय, हाय इन निर्लज्ज बकवादियों का ऐसा कहना राम की ही नहीं, किन्तु हमारी भी बड़ी अप्रतिष्ठा का कारण हुआ।

अ०—(सांस भरकर) निस्सन्देह अग्नि का नाम लैना तो बेटी की निन्दा करना है, सीताही कहना पर्याप्त है—अग्नि उसे क्या शुद्ध करैगा, उसके समान पहिले आपतो शुद्ध होले। हाय, बेटी—

शिशु होहु अथवा शिष्य मेरी ओर इक जाको भरै।
किन्तु लखि तुव शुद्धता अति प्रेम तोमें मो खरै।
बरु होउ नारी वा कुमारी पूज्य तू जग की अहै।
केवल गुनी को गुन पुजत नहिं रूप अरु नहिं बैस है॥११॥

कौ०—हाय मेरा दुख बढ़ताही जाता है॥

(बेसुध होकर गिर पड़ती है)

ज०—हाय २ यह क्या हुआ।

अ०—राजर्षि, है क्या !

नृप-अङ्गन१ शिशुजनसंग सुखमय उन दिननुकी सुधि धरी।
निरखत सनेही तुम्हहिं, अब सो आइ कसकी याहि घरी।
ऐसी दशा लहि तुव सखी यह अति विमूढ़ लखात है।
जिय कमल कोमल कुल-तियनको नैक में कुम्हिलात है ॥१२॥

अ०—अरे हाय, मैं ऐसा अभागा जनमा हूं, कि इतने दिन पीछे मिलने पर भी अपने प्यारे मित्र की रानी को प्रेमपूर्वक नहीं देख सकता ?

प्रिय, अभिन्न--उर, पूज्य, सुहृद, समधी, हितकारी।
तनधारी--आनन्द अखिल--जीवन--फलभारी।
यह तन अथवा जीउ अधिक इनसों वा प्रियतम।
रहे न का महाराज अटलप्रन श्रीदशरथ मम ॥१३॥

हाय २ यही वह कौशिल्या है।

यदि भई अनबन कबहु इनकी कान्तसों एकान्त में
निज निज अपार उराहनो दम्पति दियो मोहि तिह समें।
नित प्यार में वा कोप में मध्यस्थ दोउन को रह्यो।
बस तासु सुधि दाहति हृदय२ अबजात नाहिं यह दुख सह्यो ॥१४

अ०—हाय, बहुत देर से इनकी सांस नहीं चलती और हृदय धड़कना भी बन्द होगया है।

अ०—हाय प्यारी सखी।

(कमण्डल से हाथ में जल लेकर छिड़कते हैं)

---

१ उपस्थित होते हुए २ जलाती है।

सुहृद तुल्य दिखाय दयामयी,
प्रथम पूर्नसदां अनुकूलता।
वनि महा पुनि दारुण क्यों विधे,
अब करै मन में अति वेदना ॥ १५ ॥

कौ०—(चेत में आकर) हाय बेटी जानकी तू कहां है विवाह संस्कार की उमंग से रमणीय निर्मल मधुर मुसक्यान भरे, तेरे मनोहर भोले भाले प्रफुलित मुख कमलका अभी तक मुझे स्मर्ण बनाहुआ है, आ बेटी, विलसितचन्द्र-चान्द्रिका के समान, अपने कोमल, कमनीय, शीतल शरीर से छटा छिटकाती हुई मेरी गोद की शोभा बढ़ा। महाराज सदा यही कहा करते थे कि यह जानकी परम-पूज्य रघुवंशियों की वधू है किन्तु हमारी तो फिर भी जनक के सम्बन्ध से बेटी ही लगती है।

क०—ऐसा ही था, महारानी, ठीक है।

सोहे महीप सुतचार सुरूप वारे।
श्री राम किन्तु सबसोंहि विशेष प्यारे ॥
त्योंही वधूनि मधि श्री मिथिलाकुमारी।
शान्ता सुता सम रही नृपकी दुलारी ॥ १६॥

अ०—हाय प्यारे सुहद दशरथ महाराज तुम ऐसे ही थे तुम को कोई कैसे भूल सकता है।

पूजत कन्या पच्छके, वर पच्छहिं यह रीति।
किन्तु रह्यो में पूज्य तुव, नातेसों विपरीति ॥

अस तुम अरु सिय नेहकी, मूलहु गई नसाय ।
धिक धिक अब यहि जीवनहिं, नरक सरिस दुखदाय ॥१७॥

कौ०—बेटी जानकी क्या करूं मेरे पापी प्रानभी किसी ने वज्र कील से जड़ दिये हैं जो शरीर से नहीं निकलते ।

अ०—राजकुमारी, धीरज धरो अब तुम्हें अपने अश्रुप्रवाह को रोकना चाहिये क्या तुम्हें स्मर्ण नहीं है जो जो तुम्हारे कुल गुरुने श्रृङ्गीऋषि के आश्रम में कहाथा कि यह तो सब होनहार था सो हुआ किन्तु फिर भी अन्त में कल्याण ही होगा ।

कौ०—भगवती अब तो ऐसी आशा नहीं है ।

अ०—तो क्या आप उन कुलगुरुके वाक्यों को मिथ्या समझती हैं, आप जैसी क्षत्राणी को ऐसा नहीं समझना चाहिये उनका कथन कभी अन्यथा हो नहीं सकता ।

ब्रह्म ज्योति को तत्व जिन, प्रगट कियो अभिराम ।
तिन विप्रन के वचनमें, नहिं संशय को काम ॥
श्री जिन वानी माहिं, वसति सदां मंगल करनि ।
निहचै करि सो नाहिं, मृषा-सबद[1] पकहु कहत ॥१८॥

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

(सब कान लगाकर सुनते हैं)

---

1 झूठी बात

से किया हुआ नहीं पाया जाता, किन्तु अधिकांश में यह काम वासनाही से प्रगट हुआ पाया जाता है। यह कथन हठवादियों के मतानुसार किसी अंश में यथार्थ भी है। क्योंकि प्राचीन कविगण स्वानुभूत बातों तथा मनोवृत्तियों का वर्णन किया करते थे पर क्रमशः जब कीर्ति या धन के लोभ से काव्य रचने की प्रथा निकली और कविता बनाना एक नियत व्यवसाय ही हो गया तब से कवियों को स्वानुभव की कोई आवश्यकता नहीं रही। अपने आश्रयदाता भूपाल की रुचि के अनुसार उनकी काव्यकला नर्तकी की भांति नाचने लगी। इस प्रकार संस्कृत कविता का आद्यशुद्ध स्वरूप जब से भ्रष्ट होने लगा तबके बहुतेरे काव्य और अब इधर जिनकी प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई गई वे वीभत्स भाणादि (नाटक का भेद) अलबत्ते उक्त दोष से दूषित हो सकते हैं। यदि यही एक बात होती कि उक्त दोष अकेली संस्कृत कविता ही में पाया जाता तो भी कुछ कहना न था, पर क्या उक्त दोष ग्रीक और रोमन लोगों की कविता में नहीं पाया जाता? अथवा इतने दूर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है क्या कोई कह सकता है कि अंग्रेजी भाषा का रस सर्वस्व जिस में एकत्रित किया गया है वह शेक्सपीयर कवि का कविताकलाप उक्त दोष से सर्वथा मुक्त है? यदि यह बात ऐसी ही है, तो कुटुंब के लोगों के, अर्थात पुरुष स्त्री लड़के आदि सब के एकत्र पढ़ने योग्य उस कवि की संक्षिप्त आवृत्ति अलग २ क्यों निकलती हैं!

जो लोग पूर्व देशीय भाषाओं के काव्य तथा निर्बन्ध राहते शृंगार वर्णन का परस्पर नित्य संबंध मानते हैं उन्हें उचित है कि वे हमारे भवभूति के नाटकों का पर्यालोचन करें।

मोरवी लता की बनी कोंधनी कलित कटि,
  कोपीन मजीठ रंगरँगी सरसावै है।
कर में धनुष, तथा पीपरको दंडचारु,
  आछी रुदराछी माला मोद उपजावै है ॥ २० ॥

भगवती अरुन्धती आप जानती हैं यह किसका बालक है।

अ०—आजही हम लोग भी आये हैं।

ज०—आर्य गृष्टि, मुझे बड़ा कौतुक होरहा है जाकर भगवान वाल्मीकि जी ही से पूछिये और इस बालक से भी कहते जाइये कि ये कोई बड़े बूढ़े तुम्हारे देखने के लिये उत्कण्ठित हो रहे हैं।

कं०—जो आज्ञा।

(बाहर गया)

कौ०—क्या ऐसा कहने से वह आ जायगा?

अ०—भला ऐसा सुन्दर स्वरूप है तो उस में शील न होगा।

कौ०—(देखकर) देखो तो रुही कैसे विनीतभाव से कंचुकी की बातें सुन वह बालक ऋषिकुमारों का साथ छोड़ के इधर ही को आ रहा है।

ज०—(बहुत देर तक टक टकी लगाकर) देखो जी यह क्या बात है।

बिनै सिसुता सों सुहावन चारु लसै यहि मैं अति तेज मिठाई।
लखैं जिहि सूछम देखन हारपरै न अजानहिं रंच लखाई।

विमोह हरै मन मो बलवान रहै तब सों जिय मैं थिरताई।
यथा लघु चुम्बक-खंड स्वओर कुधातुहिं खैंचतु है बरिआई१॥२२

(लव आता है)

ल०—माना, कि ये सब बड़े हैं और परम माननीय हैं, तथापि जिन के नाम कुल और वर्ण का मुझे पता नहीं, उन्हें पहले ही पहले अपनी ओर से किस प्रकार प्रणाम करूंगा। (विचार कर) किन्तु गुरुजनों के मुख से सुना है कि ऐसा करने में कोई बुराई भी नहीं है (सनम्र आगे बढ़-कर) आप सबको लव प्रणाम करता है।

अ०—और ज०—हे कल्याणरूप, तुम्हारी बड़ी आरबल हो।

कौ०—बेटा चिरंजीव रहो।

अ०—आ, बेटा (लव को गोद में लेकर आपही आप) बड़े भाग से न केवल गोद ही भरी, किन्तु बहुत दिनों का मेरा मनोरथ भी पूर्ण हुआ।

कौ०—बेटा, इधर भी आ (गोद में लेकर) अहा, यह बालक न केवल खिलते हुए नीलोत्पल से घनश्याम वरण संग-ठित सुन्दर शरीर में, तथा कमलों की केसर खाए हुए ललित कण्ठ वाले मनहरण हंसों के से ललाम मृदु गम्भीर धीर स्वर में प्यारे रामचन्द्र की अनुहार करता है; किन्तु पूर्ण प्रफुल्लित पद्म-गर्भगत दलों के तुल्य, इसका शरीर-

१ ज़बरदस्ती।

संस्पर्श भी वैसा ही मृदुल है। चिरजियो बेटा, अपना मुख चन्द्र तो दिखला, कैसा है (ठोड़ी ऊपर को उठाकर अच्छी भांति निहार तथा प्रेमाश्रु भरकर) राजर्षि, क्या आप नहीं देखते कि अच्छी तरह निहारने से इसका मुख बेटी वधू जानकी के चन्द्रानन से मिलता है।

ज०—देखता हूं सखी, मुझे भी वैसा ही लगता है।

कौ०—आश्चर्य है न जाने क्यों मेरा हृदय उन्मत्त सा हो गया है, और सीता के से इस के अनिर्वचनीय मनोहर मुख ने मुझपर कुछ मोहनी सी डाल दी है।

ज०-सिया रघुनन्द की उनहारि गयो यह बाल महा सुखदाय।
मनो प्रतिबिम्बित ह्वै यहि माँहि रही उनकी दुति आकृतिछाय।
मिलै उनसों यहिको सब भांति विनै मय बोल सुशील सुभाय।
वृथा चित चंचल क्यों मम दैव कुमारगमें भटक्यो इतआय॥२१॥

कौ०—बेटा, तेरी मा भी है? तुझे कुछ अपने पिता की भी सुधि है?

ल०—नहीं तो।

कौ०—तो तू किसका पुत्र है।

ल०—भगवान वाल्मीकि जी का।

कौ०—बेटा कहने की सी बात कहो।

ल०—मैं तो यही जानता हूं।

(नेपथ्य में)

[देखो सैनिको, कुमार चन्द्रकेतु की आज्ञा है कि तपोवनाश्रम के समीप की भूमि पर कोई पांव न रक्खे ।]

अ०-और ज०-यज्ञ के घोड़े की रक्षा के लिये कुमार चन्द्रकेतु भी यहां आ पहुंचा है, इसलिये आज उसे भी देख सकेंगे, आहा बड़ा धन्य दिन है ।

कौ०—वत्स लक्ष्मण का पुत्र "आज्ञा देता है" ये अक्षर अमृत-विन्दु तुल्य कैसे सुन्दर तथा कानों को सुख देने वाले हैं ।

ल०—आर्य, ये चन्द्रकेतु कौन है ।

ज०—तुम राजा दशरथ के पुत्र राम लक्ष्मण को जानते हो ।

ल०—वे ही जिन की कथा रामायण में कही है भला उन्हें कैसे नहीं जानता ।

ज०—तो उन्हीं लक्ष्मणजी का पुत्र चन्द्रकेतु है ।

ल०—अच्छा तो वे उर्मिला के पुत्र तथा राजर्षि मिथिलाधिप के धेवते हैं ।

अ०—(हँसकर) इस से यह प्रगट हुआ कि कुमार रामायण जानने में बड़ा प्रवीण है ।

ज०—(विचार कर) जो तुम कथा जानने में बड़े प्रवीण हो तो बतलाओ, कि दशरथात्मजों के पुत्रों का क्या २ नाम है और कौन २ किस मा से उत्पन्न हुआ है ।

ल०—कथा का यह भाग हमने क्या; किसी ने भी अब तक नहीं सुना।

ज०—क्या कविने उसकी रचना नहीं की।

ल०—रचतो लिया किन्तु प्रकाशित नहीं हुआ। उसी का एक भाग, दृश्य काव्य के रूप में खेलने के लिये तयार हो गया है। अब उसे अपने हाथ से लिख कर वाल्मीकि जी ने नाटकाचार्य भगवान भरतमुनि के पास भेजा है।

०—सो किस प्रयोजन से।

ल०—जिस से भगवान भरतमुनि अप्सराओं द्वारा उस का अभिनय करावे।

ज०—यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।

ल०—अजी महाराज वाल्मीकि जी की उस में इतनी अधिक प्रीति है कि उसे कितने ही शिष्यों द्वारा भरताश्रमपर भेजा है। और फिर भी कहीं रास्ते में गड़-बड़ी न हो जाय इस भय से, धनुषबान बँधाकर हमारे भाई को साथ कर दिया है।

कौ०—तुम्हारे भाई भी है ?

ल०—हां, उनका नाम आर्य कुश है।

कौ०—क्या तुमसे जेठे हैं।

ल०—हां उनका जन्म कुछ पहले हुआ था।

कौं०—तो क्या बेटा तुम दोनों ने एक साथ ही जन्म लिया था।

ल०—हां जी।

अ०—अच्छा तो कथा कहां तक बन गयी है।

ल०—लोगों के मिथ्या कलंक लगाने के भय से घबड़ा कर, राजा ने यज्ञात्मजा भगवती सीता को बनवास देदिया, और शीघ्र होने वाले प्रसव की वेदना से व्याकुल उस बिचारी को बनमें अकेली छोड़ लक्ष्मण फिर लौट गये—बस यहीं तक समझिये।

कौं०—हाय बेटी भोली भाली चन्द्रमुखी, उस समय निर्जन बन में दैवकोप से तेरे कुसुम सदृश सुकुमार शरीर की क्या क्या दशा हुई होगी।

अ०—हाय बेटी,

नव दारुन या अपमान सों तू, निहचै दृग नीरहिं डारत होइगी।
सिसु होन लगे पै तिये, बनमें, कहुं बेहद पीड़ा सों आरत[1] होइगी।
धिरि हाय अचानक सिंहनि सों, किमि बेबस धीरज धारत होइगी।
करिकै सुधि मेरी, डरी हियमें, कहुं 'तात हा तात' पुकारत होइगी॥२२

ल०—(अरुन्धती से) आजी ये कौन हैं।

अ०—ये कौशिल्या हैं और ये राजा जनक हैं।

ल०—(बड़े आदर, खेद तथा कौतुक से देखता है)

---

१ दुखी।

ज०---हाय, दुष्ट पुरवासियों ने तो अपनी मर्यादा छोड़ दी, और राम ने भी कुछ विचार न करके शीघ्रता कर डाली, यह आश्चर्य है।

निरत[1] वज्रसम घोर यह, सिय-सँग अनरथ-पात।
आलोकत, मम अति प्रबल क्रोधानल बढ़ि जात॥
समर माहिं कर चापगहि, अथवा दै निज श्राप।
अन्याई कों हानि अवहिं, उचित हरन सन्ताप॥ २४॥

कौ०---हाय भगवती अरुन्धती राजर्षि के कोप को शान्त कर के राम की किसी प्रकार रक्षा कीजिये।

अ०--- यहि भांति निकारन कोप सही।
अपमानित मानधनी सबही॥
सुत राम तिहार छिमा करिये।
नृप छोभ सबै जिय सों हरिये॥
यह दीन अधीन प्रजा सबरी।
प्रति पालन जोग अबोध भरी॥ २५॥

ज०---प्रजा माहिं लखियत घने, निरपराध द्विजबाल।
अबला-गन जन जरठ[2] अरु, अंग भंग बेहाल॥
मो जीवन-धन प्रिय-सुअन[3], रघुनन्दन का और।
साप श्राप को काम कछु, अब नहिं काहू ठौर॥ २६॥

(कौतुक भरे दौड़ते हुए बालकों का प्रवेश)

---

१ सदा २ बूढ़े ३ पुत्र

लक्ष्म०---अजी "अश्व अश्व" कर के जिस पशुको नगर में पुकारते हैं सो हमने आज अपनी आंखों से देखा।

ल०---अश्व का वर्णन तो पशु शास्त्र तथा युद्ध शास्त्र दोनों ही में किया है कहो तो कैसा है।

लक्ष्म०---सुनिये,

पाछे पूंछ होति इक लम्बी, पुनि २ ताहि हिलावै।
चारि सुभग अत्यंत रुचिर जिह दीरघ ग्रीव सुहावै।
नित नूतन तृन हरित[1] चरत जो चपल चारु चितभावै।
दूरजात,का कहहिं, संगचलि क्यों न लखहु खुर जावै॥२७

(ऐसा कह लव को दोनों हाथ तथा मृगछाला पकड़ कर खींचते हैं)

ल०---(कौतुक और विनय पूर्वक परवस भाव दिखाकर) हे महानुभाव, देखिये देखिये ये मुझे खींचे लिये जाते हैं।

(जल्दी से फिरता है)

अ०---और अ०--जाओ बेटा अपना कौतुक शान्त कर आओ।

कौ०---भगवती, बिना इसके देखे मुझ से रहा नहीं जाता, इस लिये आओ और कहीं से इस को देखें।

अ०---अरे वह चपल तो बड़ी दूर निकल गया, कैसे दीख पड़ेगा।
(कंचुकी आता है)

कं०---महाराज बाल्मीकिने कहा है कि, अवसर पड़ने पर इस बालक के बारे में आपको बतलाया जायगा।

---

1 हरे हरे।

ज०—कुछ गूढ़ बात इसमें होगी, भगवती अरुन्धती, सखी कौशिल्या और आर्य गृष्टी चलिये सब के सब स्वयं भगवान वाल्मीकि जी से भेंट करें।

(सब जाते हैं)

लङ़०—कुमार, देखो यही वह कौतुक है।

ल०—देखा और जान भी लिया कि यह अश्वमेध का घोड़ा है।

लङ़०—कैसे जाना ?

ल०—तुमभी बड़े मूर्ख हो, तुमने उस कांड में पढ़ा तो है, देखते नहीं सैकड़ों रक्षक सिपाही हथियार बांधे कवच पहने धनुष लिये इस के साथ हैं—यह तो अधिकतर सेना ही दिखाई पड़ती है-इस पर भी तुम्हें विश्वास न हो तो जाकर पूछ लो।

लङ़०—तो क्यों भाई, ये सब के सब किस प्रयोजन से घोड़े को घेरे फिरते हैं।

ल०—(स्पृहा के साथ आप ही आप) जान लिया, ठीक, अश्वमेध तो विश्वविजयी नृपरत्न के अतुलित महत्व तथा जगत के अन्य क्षत्रियों के पराभव की कसौटी है।

(नेपथ्य में)

दशकन्धर-कुल अटल रिपु, धर्म धुरन्धर धीर।
सात द्वीप नव खंड में, एक वीर रघुवीर ॥

ताही को यह मख-तुरँग, झंडा सुभग अपार।
अथवा इनके रूपमें, क्षत्रिनु को ललकार ॥ २८॥

ल०—(व्यथा प्रगट करके) अरे इन लोगों के वाक्य कैसे क्रोधानल बढ़ाने वाले हैं!

लड़०—क्या कहागया, कुमार तुम तो चतुर हो सब समझ गये होगे।

ल०—अरे क्या सारा संसार क्षत्रिय शून्य होगया जो तुम इस प्रकार दूतकी हांक रहे हो।

(नेपथ्य में)

[अरे, महाराज रामचन्द्र के सामने कौन क्षत्री है।]

ल०—अरे पामरो, तुम सबको धिक्कार है।

यदि बढ़े यह वीर, रक्षो करें।
यह कहा अरु ढोंग भयावनो॥
कछु न लाभ वृथा बकवादसों।
सरकुमारि हरौ तुम्हरी भुजा॥ २९॥

अरे लड़को ढेले मार मार कर इस घोड़े को इधर फेरदो, जिस से यह बिचारा हिरनों में चरता फिरै और उधर न जाने पावै।

(एक सैनिक का प्रवेश)

सै०—(क्रोध और गर्व से) अरे क्योंरे चंचल, क्या बक बक कर रहा है। निष्ठुर निर्मोही शस्त्रधारियों का दल बच्चों की भी सगर्व बातें नहीं सहता। जा जब तक अरिमर्दन राज-

कुमार चंद्रकेतु पूर्वीय वनों का मनोरम दृश्य देख कर न लौट आवें, तब तक इन गहन वृक्षों की आड़ में होके भागजा—अरे जा।

कश०—कुमार, इस घोड़े को रहने दो वह देखो शस्त्र चमकाते हुए सैनिकों का दल तुम्हें धमका रहा है, और यहां से आश्रम बहुत दूर है इसलिये चलो रे सब के सब हिरन की सी छलांगें भरते हुए भाग चलें।

ल०—(हंसकर) क्या सचमुच शस्त्र चमक रहे हैं (धनुष उठाकर) अच्छा तो फिर—

प्रबल प्रतंचा[1] जीह[2] लहराति चंचला सी,
उतकटि कोटि बिकराल दाढ़ जाकी है।
घोर घन घररर घोर जा टकोरन की,
गजबीली अट्टहांसी रनरंग छाकी है।
बिकट उदर धारो, खैंचत तनत सोई,
मानो जमुहाई लेन परचंडता की है।
बिश्वहि ग्रसन काज उद्यत ये चाप मम,
धारै आज जम की सदाप छवि बांकी है॥ ३०॥

(यथोचित घूमधाम कर सब जाते हैं)



१ डोरी २ जाभ

अंक ५

(नेपथ्य में)

[सैनिको, घबड़ाओ मत घबड़ाओ मत,

सुह अवासि ही दीसत यहां सों शुभ्र रथ छविवन्त ।
लावत भजावत अश्व दीसत वेगवन्त सुमन्त ।
अति खाय मग हदका पताका फरफराति अपार ।
तुव संग रन सुनि तुरत आवत चन्द्रकेतु कुमार ॥१॥]

(रथपर चढ़े धनुषबान हाथ में लिये आश्चर्य और हर्ष युक्त चन्द्रकेतु का सुमन्त के साथ प्रवेश)

च०—आर्य सुमन्त देखो देखो,

किञ्चित कोपके कारण सों जिह आनन[1] ओप अनूपम सोहैं ।
गुञ्जित सिञ्जनि[2] को धनुलै जुग छोरनि मंजु टकोरत जो है ।
चंचल पंच-शिखानि[3] किये बरसावत सैन पैं बान बिमोहैं ।
न्हूइ रह्यो रन रंग महा यह बालक बीर बतावहु को है ॥२॥

अहा कैसा आश्चर्य है ।

अकेलोही है मुनि को यह बाल तऊ भयभीत न रंच लखावै ।
मनो कुलहा रघुबंस को चारु दुरयो जिय नेहलता उलहावै ।
दले गज गंडथलीनी की ग्रन्थि जबै धनु घोर टँकोर मचावै ।
घिरयो बहु बीरन सों चहुं तीर चलावत मो उर कौतुक छावै ॥३॥

---

१ मुख २ डोरी ३ चोटी ।

सु०—आयुष्मन—

विमल छविगुन सुर असुरसन विपुल वीर जवान।
निरखि यह सिसु सकल विधिसों ठीक तोहि समान।
मोहि सुभ आवत परम धृत-धनु[1] सघन[2] घनश्याम।
कुशिकसुत-[3] मख-रिपुनि प्रमथत[4] सुभगतनु श्रीराम ॥४॥

चं०—लखत खन[5] अति चंचलित जिन अंगुली उत्ताल।
समर शंका कराल गहि अस कुपित सैन विसाल।
कनक-किंकिनि झनझनावत टिनिन टिन रथजाल।
निरत मदजल चुअत श्यामल द्विरद[6] वारिद[7] माल।
जे घटा दल सकल घेरत एक बालहिं आज।
होत नीचे नैन मम लखि लाज को यह काज ॥ ५ ॥

सु०—वत्स, जब सब मिलकर इसका बाल बांका नहीं करसकते तो फिर एक एक से क्या होता है।

चं०—आर्य, शीघ्र करो ! इसने चारों ओर हमारे आश्रित जनों का संहार करना आरंभ कर दिया।

दुंदभी की घोरसन योदा ललकार आकी,
धाड़ि बाढ़ि रव[8] और तीक्ष्ण सरसायँ देत।
कुंजरनि पुंज जो गरजि गिरि कुंजनि कौं,
गुंजत, तिनहुँ कान क्षुब्ध उपजायँ देत।

१ धनुष धारा २ घने बादलों के से रंग वाले ३ विश्वामित्र के यज्ञ के रिपु ४ मथते हुए ५ समय ६ हाथी ७ बादल ८ शोर।

भाजत भयानक विपुल मुंड रुंडनिसों,
काटि यह वीर महीतलपै बिछायें देत ।
लागे जनु काल विकराल पूरन अघाय,
खाय खाय जूंठिन चहुंधा बिथुरायें देत ॥६॥

सु०—(अपने आप) ऐसे पराक्रमी के साथ चन्द्रकेतु को द्वन्द युद्ध करने की किस प्रकार अनुमति दूं (विचारकर) और रघुवंशी राजाओं में रहते रहते हम बूढ़े होगये-इस रणभूमि से पीठ दिखलाना रघुवंशीयों का धर्म नहीं—इस लिये रण उपस्थित होने पर सिवाय लड़ने के और क्या उपाय है-

चं०—(विस्मय लज्जा और खेद से) धिक्कार है कि हमारी सैना के लोग रण से भागने लगे ।

सु०—(रथ का वेग दिखाकर) आयुष्मन् वह वीर अब बातें करने योग्य आपके समीप आगया ।

चं०—(विस्मृति जनाता हुआ) आर्य, दूतों ने इसका नाम क्या बतलाया है ।

सु०—लव ।

चं०— तुच्छ सिपायनु[1] विजय करि, यश न बढ़ै लव तोर ।
हौंस बुझावहु जीय की, मो संग लरि इत ओर ॥७॥

सु०—कुमार देखिये २ ।

---

१ सिपाहियों को ।

सुनत ही गुरु टेर, दल को दलन तजि रनधीर।
मुरत इत, रनमद भरयो यह लसत बालक बीर॥
सघन घन की गरजनो सुनि, सिंह को जिमि बाल।
फिरत सदरप ठवनिसों, तजि कुंजरनि ततकाल॥८॥

(नेपथ्य में महा कोलाहल होता है)

(शीघ्र और उद्धत चालसे लव का प्रवेश)

०—वाह, राजपुत्र वाह, क्यों न हो, आखिर तो सच्चे इक्ष्वाकुवंशी राजपूत हो न! लो आओ मैं तुम्हारे सामने आया।

(नेपथ्य में फिर कोलाहल)

ल०—(शीघ्र लौट कर) अरे क्या फिर भी ये हारे हुए योद्धा साहस करके युद्ध के लिये लौट आये हैं और मुझपर प्रहार करना चाहते हैं, धिक् निर्लज्जो!

यह जो उठत सब ओरसों दल-प्रबल कलकल-घोर।
बस, लील लेहि अबैहि तिहि मम चण्ड कोप अथोर।
जिमि प्रलय आंधी सों विचंचल जलधिजल बलभूरि।
गिरि घात सन अति क्षुभित बड़वानल ह्वै वहुपूरि॥९॥

(इधर उधर घूमता है)

चं०—हे कुमार!

निज अलौकिक शौर्य सौं तू लगत प्रिय मन माहिं।
मम मित्र तिह कारन भयो, मुहि तोहि अन्तर नाहिं॥

हे वीर, निज ही सैन कों तू हनत फिर किहि हेतु
जब दरप-नासन-तुव, कसौटी अहहि चन्द्रकेतु ॥ १० ॥

ल०—(सहर्ष शीघ्र लौट कर) अहा इस सूर्यवंशी महा पराक्रमी वीर की वाणी मधुर और कटु दोनों ही प्रकार की है-इस कारण इन्हें छोड़ कर इसे ही देखना चाहिये।

(नेपथ्य में फिर कोलाहल)

ल०—(क्रोध और तिरस्कार पूर्वक) अरे, इन पापियों के कोलाहल से तो नाक में दम हो गया, यहां तक कि इस वीर के साथ बातें भी करते नहीं बनता।

(लौटता है)

चं०—(सुमन्त से) आर्य, देखिये २, देखने ही योग्य है।
कौतुक-जनक यह दरपसों मुहि लच्छ करि आ ओर।
आवत लसत मम-सैन-अनुसृत[1] हाथ लै धनु घोर।
दोउ ओरसों जनु लहि झकोरन पवन के घन श्याम।
सुठिपाक-सासन को सरासन[2] धारि शोभा धाम ॥ ११ ॥

सु०—कुमार ही इसे देख सकते हैं, हम तो विस्मय के मारे यह भी नहीं कर सकते।

च०—हे राजा लोगो,

कहँ तुम सब गज हय रथासीन।
कहँ यह पदाति[3], साधन विहीन ॥

१ पीछा किए जाते हुए २ इन्द्रधनुष ३ पैदल।

कहँ कवचयुक्त तुव तन कराल।
कहँ यहि तन कोमल मिरगछाल॥
कहँ वयोवृद्ध तुम जन अनेक।
कहँ निस्सहाय यह बाल एक॥
तउ करत याहि पै तुम प्रहार।
धिक्कार सबनि कों बार बार॥ १२॥

ल०—(दुख के साथ) क्या यह मुझ पर दया दिखलाता है! (सोच कर) अच्छा पहले तो जृम्भकास्त्र से सेना को मोहित करदूं जिससे समय नष्ट न हो।

(ध्यान करता है)

सु०—अरे यह क्या अचानक ही हमारी सेना का कोलाहल बंद हो गया।

ल०—अब मैं इस अभिमानी को देखूंगा।

सु०—वत्स मेरी समझ में तो इसने जृम्भकास्त्र का प्रयोग किया है।

चं०—इसमें क्या सन्देह है क्योंकि:—

मनौप्रचंड अन्धकार विज्जु सन्निपात है।
लखैं जबैहि; चक्षु चौंधियात, ना दिखात है।
लिखी सुचित्रसी ठढी समस्त सेन ह्वै रही।
अमोघ घोर जृम्भकास्त्र है यही अवश्यही ॥१३॥

देखो २ कैसे आश्चर्य की बात है।

सघन रसातल-गरभगत-कुंजनि[1] में।
पुंजित-तिमिर[2] सम कारे कजरारे हैं।
पीतर-तपत[3] को सो पिंगल[4] प्रकाश करि।
भरैं अब जृम्भक अकास मैं सरारे हैं।
यथा प्रलै-प्रबल प्रचंड पौन उच्चलित[5],
बिन्धाचल-कूट-कन्दरानि मैं करारे हैं।
धावत कपि लरंग[6] बिघुत[7] सँवारे घने,
धाराधर[8] मानहु मतंग[9] मतवारे हैं॥ १४॥

सु०—भला इन के पास जृम्भकास्त्र कहां से आये।

चं०—मेरी समझ में तो भगवान वाल्मीकि जी ने दिये होंगे।

सु०—वत्स, भगवान वाल्मीकि को अस्त्रों के विषय से क्या प्रयोजन, और विशेष कर जृम्भकास्त्रों से, क्योंकि—

यह सबै उत्पन्न कृशास्वसों,
प्रथम कौशिक कों उनसों मिले।
तिन विचारि स्वशिष्य परम्परा,
पुनि दिये गुरु सेवक रामकों॥ १५

चं०—तब भी क्या हुआ जिन लोगों में सत्व गुण का विशेष आविर्भाव होगया है, वे आपही समन्त्र जृम्भकास्त्र के देने में समर्थ होते हैं।

---

१ पृथ्वी की भीतरी गुफाओं में २ एकत्रित अंधेरा ३ तपी हुई पीतल ४ लाल ५ प्रलय की प्रचंड आंधी द्वारा उछले हुए ६ कालारंग ७ बिजली ८ बादल ९ हाथी।

सु०—वत्स, सावधान हो जाओ वह वीर पास आ पहुंचा ।

दोनों कु०—(परस्पर आप ही आप) ये कुमार तो बड़ा सुन्दर है
(स्नेह से देखकर)

लहि औचक आसु समागमको, लखि कै यहि वीरपनो अधिकाई । भयो कोऊ उदै ये पुरानो किधौं, परचै जनमान्तर को छकु आई । अपनो अथवा अपने कुलको, बिधि के बस सों यह जानी न जाई । परि या छिन याहि लखें उमगे प्रियभ्रात सनेह हिये सुखदाई ॥ १६ ॥

सु०—बहुधा जीवधारियों का धर्म ही यह है, जिस के कारण एक दूसरे से रसमयी प्रीति होजाती है-इसी को लोग गूढ़-मैत्री वा आंख का लगना कहते हैं और इसे ही अनिर्वचनीय निस्स्वार्थ प्रेम के नाम से पुकारते हैं ।

सहज नेह रस धाम, आवै बस कोउ न चलत ।
नित बखिया को काम, जुग अन्तस पटपै करै ॥ १७ ॥

दोनोंकु०—(एक दूसरे से आप ही आप)

चीकनो चारु पटम्बर[1] सो, अति कोमल मंजुल जासु शरीर है । छौड़त कैसे बनै यहि पै, मम तीखो कराल विनाशक तीर है । देखत ही जिह भेटको, अकुलाय वड़ो मन होतु अधीर है । गात सबै पुलकात अबै, भरे नैननु मांहि सनेह को नीर है ॥ १८

१ रेशमी कपड़ा ।

अथवा—

गति शस्त्र चलाये बिना कहा और है, सूरसों, जो रनमत्त अपार है। पुनि शस्त्रहिं धारिकें काह भयो, जो कियो भट्ट पैसेहु पै नाहिं बार है। रनसों मुखमोरत का गिनि है, लखि मोहिं उठावत अस्त्र अगार[1] है। हिय प्रेम, तऊ बिपरीत चलें, अति दारुन बीरनु को व्यवहार है॥ १९.

सु०—(लव को देख आंसू भरके आपही आप)

मृदु मनोरथ की प्रिय-मूल ओ,
प्रथम ही हरिने, हरिही लई।
लुनि चुके जब कोमल बल्लरी,
तब सु-आस प्रसूननकी कहां॥ २०॥

चं०—आर्य सुमन्त, मैं रथ से उतरता हूं।

सु०—किसलिये, वत्स,

चं०—जिस से वीर का आदर और क्षत्रिय धर्म का यथावत पालन हो क्योंकि युद्धशास्त्रवेत्ताओं के मतानुसार रथी को पदाति के साथ लड़ना कहां उचित लिखा है।

सु०—(आपही आप) हाय मैं तो धर्म संकट में पड़ा,

कहहुँ का विधि न्याय-मृजाद[2]को,
करहुँ याहि अवै प्रतिषेध मैं।
रथ बिना लरिबे हित शत्रुसों,
किमि भला अनुमोदन ही करौं॥२१॥

---

१. सामने २ मर्यादा।

सं०—जब हमारे पिता, पितामह आदि धर्म विषयक शंकाओं में आप से परामर्श लेते आये हैं, तो अब इतनी चिन्ता में पड़ने का क्या कारण है ।

सु०—आयुष्मन् तुमने ठीक विचार किया है ।

समर-न्याय यही सब भांतिसों,
यहि अमोल सनातन धर्म है ।
बस यही रघुसिंहन की रही,
सतत वीरचरित्रमयी प्रथा ॥ २२ ॥

चं०—आर्य आपने ठीक कहा,

तुव पढ़े इतिहास पुरान हैं,
सदुपदेस ललाम सुनीतिके ।
बिसद[1] जानि सको बस आपुही,
कुल-मृजाद सबै रघुवंसकी ॥२३॥

म०—(आंखों में आंसू भर और गले लगा कर)

तुव तात लछिमन ने कियो जो इन्द्रजीत निपात[2] ।
सो सब लगे मोहि जा घरी जनु कालि की सी बात ।
अब तिनहुँ के तुम पुत्र, धारत बीरता व्रतसाज ।
धनिधन्य जशरथ कुल प्रतिष्ठा बिमल छाई आज ॥२४॥

चं०—(कष्ट के साथ)

कहा प्रतिष्ठा होइगी, हम कुल की मतिवान ।
कुल जेठे ही के नहीं, जब कोऊ सन्तान ॥

---

१ अच्छी प्रकार २ बध ।

याही दुखसों अति खरे, चिन्तातुर छवि छीन।
मम पितु अरु द्वै बन्धुतिन, निसिदिन रहत मलीन ॥२५॥

सु०—हाय, चन्द्रकेतु की ये बातें सुनने से हृदय विदीर्ण हुआ जाता है।

ल०—(आप ही आप) अहा, अन्तःकरण में मिश्रित रसका संचार हो रहा है—

जिमि करत प्रफुलित कुमुदिनी को उदित पूरन चंद।
तिमि भरत हियमें दरस जाको आते अमल आनंद।

किन्तुः—

झन झनन झनझन करन-कटु गुनगुंज[1]-मय धनु ओर।
गहि लाहि, यह भुज, बीररस भरि समर-प्रिय पुनि होय ॥२६॥

चं०—(रथ से उतर कर) आर्य, सूर्यवंशी चन्द्रकेतु आपको प्रणाम करता है।

सु०—अतुलित अजित अपार ओजमय, पावन भारो।
नृप ककुत्थ के तुल्य होउ प्रिय तेज तिहारो।
नित्य विष्णु बाराह देव तुम विघन नसावैं।
सुन्दर करि कल्यान मोद हियमें सरसावैं ॥२७॥

और भी—

तुव कुल-पिता सविता समर में तोहि आनंदित करैं।
रघुवंश- पूज्य वशिष्ठ मुनिहुं नित्य तुव हिय सुखभरैं।

१ कानों के लिए कठोर शब्द वाली डोरी।

अरु इन्द्र इन्द्रावरज पावक पवन पन्नग रिपु भली।
निज ओज की पूरन प्रभा दैं करहिं तोहि सब बिधि बली॥
मंत्रसी श्रीराम लछिमन-धनु प्रतंचा धुनिघनी।
देइ तोकों मंजु मंगल-करनि जय शोभा सनी॥२८॥

ल०—(चं०को रथ से उतरता देख) कुमार, बस करो, हो गया आदर! आपतो रथ पर बैठेही अच्छे लगते हैं।

चं०—तो आप भी दूसरे रथकी शोभा बढ़ावैं।

ल०—(सुमन्त से) आर्य, राजकुमार को रथ पर बैठा लीजिये।

सु०—तो तुम भी वत्स चन्द्रकेतु की बात मानलो।

ल०—जो वस्तु अपनी ही है भला उसके स्वीकार करने में संकोच कैसा? किन्तु बात यह है कि वनवासी होने के कारण हमें रथ पर चढ़ने का अभ्यास नहीं।

सु०—वत्स, तुम दर्प और सौजन्य का यथोचित बर्ताव करना जानते हो, जो कहीं तुम ऐसेको इक्ष्वाकु-कुल-कमल दिवाकर राजा रामचंद्र देखते तो उनका हृदय प्रेम से गदगद हो जाता।

ल०—सुना गया है कि वे राजर्षि बड़े सज्जन पुरुष हैं।

सांचहि हमहुँ न मख-विघनकारि[1]।
जो रहे आपु निज हिय विचारि॥
गुनवन्त राम कों जगत माहिं।
कहु मानत को जन पूज्य नाहिं॥

---

१ यज्ञ में विघ्न डालने वाले।

पै सब क्षत्रिनु कों तुच्छ मानि।
तुव हय-रक्षक जो कही बानि॥
सुनि ताहि हमहुँ जिय चढ्यो रोस।
बस, और कछू नहिं कियो दोस॥ २९॥

चं०—(मुसकराता हुआ) क्या आप को हमारे पूज्य-चरण तात के प्रताप की बड़ाई बुरी लगती है।

ल०—अजी बुरी लगे या न लगे, पर इतना मैं पूछताहूँ कि राजा रामचंद्र तो बड़े धीर स्वभाव के सुने जाते हैं। वे न तो स्वयं अभिमानी हैं न उन की प्रजा को अभिमान होता है, फिर बतलाइये ये लोग उन्हीं के आदमी होकर ऐसी राक्षसी भाषा क्यों प्रयोग करते हैं। देखिये—

दरप[1] भरे उन्मत्त पुरुष की बानी।
ऋषीनु ने सब ठौर राक्षसी मानी॥
सकल वैर को सोई बीज बुवावै।
नष्ट भ्रष्ट करि जगत कष्ट उपजावै॥ ३०॥

इस प्रकार उन्होंने इस की निन्दा की है और इसके विरुद्ध जो अन्य वाणी है उसकी प्रशंसा वे इस भांति करते हैं—

कामना पूरी करै सबकी दुख दारिद को दल दूरि बहावै।
पाप के पुंजहिं लुंज करै अरु कीरति लौनी लता उलहावै॥
सुन्दर सूनृत[2] बानी सदा जय मंगल मोद की मातु सुहावै।
याही सों धीरनु के मत में वुह काम-दुहा[3] सुरधेनु कहावै॥ ३१॥

---

१ घमंड २ सच्ची ३ कामधेनु।

सु०—भगवान वाल्मीकि के शिष्य इस कुमार का तो बड़ा ही पवित्र स्वभाव है आर्ष दृष्टान्त दिये बिना तो बातें ही नहीं करना जानता ।

ल०—और जो चंद्रकेतु यह कहते हैं, कि क्या तुमको पूज्य-चरण तात के प्रताप की बड़ाई बुरी लगती है, सो आप ही बतलाइये कि क्षत्रिय धर्म क्या एक ही व्यक्ति के लिये है; क्या एक राम ही के सिर क्षत्रियों के समस्त वीरतादि गुणों का ठेका है, और कोई उनका आधार ही नहीं हो सकता ?

सु०—बस करिये, अधिक न बढ़ाइये, कहने से ही परख लिया कि आप रघुवंशावतंस महाराज राम को नहीं जानते ।

प्रबल सैनिक वीरनु मारिकें,
प्रगट सत्य करी तुम वीरता ।
परशुराम झुके जिह सामने,
जनि बकौ उनकी कहि बात यों ॥३२॥

ल०—(हँस कर) आर्य, मान लो कि उन्होंने परशुराम जी को भी हरा दिया, पर इससे भी क्या बड़ी प्रशंसा की बात हुई ।

जीभ को बल द्विजन में यह स्वयं-सिद्ध प्रमान ।
बाहु को बल क्षत्रियनु में जग प्रसिद्ध महान ।
शस्त्र--धारी द्विज रहेउ भृगुवंसमनि महाराज ।
कहु तिनहिं जय करि राम ने कियो कौन दुर्जेय काज ॥ २३ ॥

चं०—(बिगड़ कर)

कोपज[1] है कम्प, जासों चोटिनु की गांठिखुलि,
चंचल चिकुर[2] चारु कारे लटकारे हैं।
कछु २ कोकनद-छद[3]-छवि के समान,
भये नैन इनके अपुहि रतनारे हैं।
सिकुरत, चलत, कुटिल भौंह भंग-युत,
आनन सकोप अति उग्र[4]-ओपवारे हैं।
लसत मयंक[5] सकलंक, किधौं पंकजपै[6]
गुंजरत मानहुँ मलिन्द[7] मतवारे हैं॥२६॥

दोनों कु०—(परस्पर) अच्छा तो फिर, आओ रण योग्य भूमि पर उतर चलें।

(सब गये)



१ क्रोध से उत्पन्न २ केश ३ लाल कमल पत्र ४ भयानक आभा ५ चंद्रमा ६ कमल ७ भौंरा।

अंक ६

अथ विष्कम्भक।

(उज्जल विमानों पर चढ़े विद्याधर और विद्याधरी का प्रवेश)

वि०—अहो, असमय कलह के कारण परम प्रचण्ड अखण्ड क्षात्र तेज से दीप्त, इन सूर्यवंशी कुमारों के विक्रम-युक्त विचित्र चरितों ने सब सुरासुरों को कैसा विमोहित कर लिया है। क्योंकि हे प्रिया देखो—

झन झनन कंकन सम क्वनित[1] कल किंकनीक विशाल।
जुग छोर लनलगि, जासु गुन, अति करति शब्द कराल।
धनु तानि अस, सर तजत, जिन शिख निरत चंचल चारु।
जग-भयद अद्भुत तिन दोउन मधि बढ़त युद्ध अपारु॥ १॥

दोउ कुँवरनु के कल्यान काज।
द्रुम द्रुम दुन्दुभि नभ बजति आज॥
गम्भीर जासु सुख-दैन शोर।
जनु सरस सघन घन घन करोर॥ २॥

इस से चलो हम भी, इन दोनों वीरों पर सुन्दर प्रफुल्लित स्वर्णमय सरोजों से मिश्रित, मधुर मकरन्द सुरभित, कल्पतरु मन्दार आदि दिव्य द्रुमों के नवीन मणि सरीखे स्वच्छ कमनीय कलित पुष्पों की निरन्तर सानन्द सघन वर्षा करें।

---

1 शब्द करता हुआ।

बि०धरी०—अब के फिर किसलिये इस सहसा दौड़ती हुई विद्युच्छटा से सारा आकाश झटपट पिंगल वर्णका होगयाहै।

वि०—आज तो,

किधौं त्रिलोचन[1] को यह लोचन तीसरो।
खुल्यो सृष्टिसंहार हेतु रिससों भरो॥
चमकत जनु उज्जल जोतिर्मय चण्ड हैं।
बिसकर्मा की सान चढ्यो मार्तण्ड है॥ ३॥

(कुछ सोचकर) ओहो, जाना, अब जाना, चन्द्रकेतु ने यह आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया है, उसी की यह ज्वाला बरस रही है:—

अवसि जासु भयानक झर्प सों,
झुरसि औरि धुजा जिनके गये।
अस विचित्र विमाननु-मंडली,
भजि चली भयसों छितरायकै॥
त्रिविधि रंग भये झुरसे लसें,
सुपट[2] अंचल दिव्य धुजान के।
जनु शिखा उमपै बहु अग्निकी,
मुदित मंजुल कुंकुम डारती॥४॥

कैसे आश्चर्य की बात है, वह देखो भीषण वज्रखंडों के समान तीक्ष्ण अंगारों की झड़ी लगाए, और बेग से लप-लपाती उठती ज्वाल-जिह्वासे उद्दंड भैरव रूप धारण किये,

---

१ महादेव २ वस्त्र।

मानौ साक्षात भगवान अग्निदेव चले आरहे हैं। चारों ओर यह उन्हीं का प्रचण्ड प्रताप फैलरहा है। अब तो ज्वाला सही नहीं जाती इसलिये प्यारी को अपने पार्श्व में छिपाकर यहां से कहीं दूर भागना चाहिये।

(वैसाही करता है)

वि०धरी०--आहा, प्राणनाथ, मंजु मुक्तमाल सम सीतल मृदुल तुम्हारे पुष्ट काय के स्पर्श से आनन्दोल्लासित मुझ अधमुंदे तरल नयनों वाली का सन्ताप अब दूर होगया है।

वि०---प्यारी, भला मैंने इस में क्या किया, अथवा,

चरु कछु न करै तउ सर्वदा,
बासि समीप सबै विपदा हरै।
सुहृद जो कहुं जासु जहान में,
अवसि सो तिह जीवनमूरि है॥ ५॥

वि०धरी०---चमचमाती चंचला की चंचल चमकयुक्त, मतवाले मयूरों के कंठ सरीखे सघन श्यामल धाराधरों से यह आकाश मंडल क्यों व्याप्त हो रहा है।

वि०---अहा, अवश्य ये कुमार लव द्वारा चलाये हुए वरुणास्त्र का प्रभाव है। देखो प्यारी, किस प्रकार सहस्रों निरन्तर मुसलधाराओं के पड़ने से पावकास्त्र ठंडा होगया।

वि०धरी०---यह बड़े आनन्द की बात हुई।

वि०---हाय २ अति सबकी बुरी होती है-क्योंकि प्रबल आंधी के जोर से चारों ओर उमड़ते घुमड़ते घूम २ कर घनघोर

मचाते काले मतवाले मेघों के सघन गाढ़ान्धकार में बँधा हुआ, किंवा सहसा सम्पूर्ण विश्वग्रसनार्थ फटे हुए विकराल कालकंठ की मुखकंदरा में चक्कर खाता हुआ, अथवा युगान्त की योगनिद्रा में मग्न निश्चेष्ट सांस बन्द किये नारायण के उदर में पड़ा हुआसा ये सम्पूर्ण जीवलोक कांप रहा है। वाह! कुमार चंद्रकेतु वाह, उपयुक्त अवसर पर तुमने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। क्यों कि—

चलत पौन अहा वह देखिये,
नसि गयीं घन मेघन की घटा।
जगत[1] ज्ञान हिये जिमि होत है,
जग–प्रपंच सबै लय ब्रह्म में ॥ ६

वि०धरी०—नाथ, देखो तो ये कौन हैं जो शीघ्रता के साथ, ऊंचा हाथ किये, दूरही से पटके का छोर हिलाकर लड़ाई को मधुर भाषण द्वारा बरजता हुआ, दोनों कुमारों के बीचमें अपना विमान उतार रहा है।

वि०—(देखकर) यह तो शम्बूक को मारकर महाराज रघुनाथ जी आरहे हैं।

सुनिकै वर बैन प्रभावभर्यो उनको, मृदुमंजु सनेह सों छायो।
लित गौरवराखन, युद्ध तज्यो लव धारत सीरो सुभाव सुहायो।
अरु चन्द्रकेतु विनीत महा, निज तात के पायनु सीस नवायो।
अस पूत दोऊनि के मेटनसों नृप मंगल मोद लहे मनभायो॥७॥

चलो प्रिया हम भी अब इधर से चलें।

(दोनों जाते हैं)

[इति विष्कम्भक]

---

१ जागने पर, उत्पन्न होने पर

(रामचन्द्र लव और प्रणाम करते हुए चन्द्रकेतु का प्रवेश)

रा०—(पुष्पक विमान से उतर कर)

दिनकरकुल के चन्द, चन्द्रकेतु पावन परम।
करहु मोहि सानन्द, लागि हृदय सों तुरत अब॥
निज सरीर परसाउ, तुहि न सदृश सीतल सुखद।
प्रियतम आइ नसाउ, विकल करनि मम-जिय जरनि॥८॥

चं०—महाराज को प्रणाम है।

रा०—(प्रेम से आंसू भर तथा उसे गले लगा के) बेटा दिव्यास्त्र-धारणकरने वाले तुम कुशल से तो रहे?

चं०—महाराज के आशीर्वाद और अद्भुत पराक्रमशाली प्रिय-दर्शन लव के दर्शन–लाभ से मुझे परम आनन्द है। अब तात, आपकी सेवा में विशेष कर यह निवेदन है कि आप उसी कृपादृष्टि के साथ जो कि मेरे ऊपर रही है अथवा उस से भी अधिक दयाभाव से इस प्रशस्त महावीर को देखिये।

रा०—(लवको देख कर) आहा वत्स चन्द्रकेतु के मित्रकी बड़ी गम्भीर सुहावनी सूरत है।

तनधारी किधौं धनु-वेद लसै, तिहुँलोक की पीर नसावन काज। यह औतर्‌यो क्षात्रिय धर्म किधौं, श्रुति-पाथ-सेतु रखावन काज। किधौं शाके-समाज उदोत भयो, गुन संचय के मन-भावनकाज। जग पुण्य-पदारथपुंज घनो किधौं प्रेम प्रमोद जगावन काज॥ ९॥

ल०—अहा दर्शनमात्र ही से इन महा पुरुषका पुण्य-प्रभाव अनुभव होता है।

अभयदान सनेहऽरु भक्तिको,
मनहु एक यही अवलम्ब है।
धरम धीरज की अथवा लसै,
मधुर मूर्त्ति प्रसन्न प्रभामयी ॥४॥

अहा कैसे आश्चर्य की बात है !!

अन्तर ध्यान विरोध भयो, हिय सान्त सुभाय[1] ने रंग जमायो।
ऐंठ न जानै गई कितकों, अरु नम्रता ने अति मोहि नवायो।
दर्सन सों इन के झटही, यह जानि परै बस काऊ के आयो।
सांचु ही तीरथको सो प्रभाव अनूपम ऐसेनु मैं बिरमायो ॥१५॥

रा०—अहा अकस्मात् ही सम्पूर्ण दु:ख शान्त होकर न जाने क्यों अन्त:करण में स्नेह उमड़ रहा है। और, लोग यह भी कहते हैं, कि स्नेह सर्वदा किसी न किसी निमित्तपर निर्भर होता है, तब तो इन दोनों वाक्यों से एक दूसरे का निषेध हुआ। किन्तु—

यह गूढ़ सुभाउ को कारन कोउ, सबै जग मैं जिय मेल मिलावै। नाहिं निर्भर सुन्दर रंग औ रूपपै प्रेम-प्रथा, निहचै मन आवै। लखि मित्र[2] पवित्र सरोरुह[3] हीय प्रफुल्लित प्यारी छटा सरसावै। अरु चन्द्रके होत उदोत, द्रवै नित चन्दर-कान्तमनी चित भावै ॥ १२ ॥

---

१ शांत स्वभाव २ सूर्य ३ कमल।

ल०—चन्द्रकेतु ये कौन हैं।

चं०—प्रिय, ये मेरे आराध्य-चरण पूज्य तात हैं।

ल०—जैसे तुम्हारे लगते हैं वैसे ही हमारे भी लगे, क्योंकि आपतो हमें मित्र मान चुके हो न ? किन्तु रामायण के चरित्रनायक तो चार पुरुष हैं जिन में से प्रत्येक को तुम इसी पद (तात) से सम्बोधन कर सकते हो-इस लिये बतलाइये यह उन में से कौन हैं।

चं०—ये हमारे सब से बड़े तात हैं।

ल०—(उल्लाससे) अहा क्या ये रघुनाथजी हैं, आज का दिन धन्य है जो इन का दर्शन हुआ (विनय और कौतुक से देखकर) हे तात, यह वाल्मीकि जी का शिष्य आपको प्रणाम करता है।

रा०—आओ प्यारे, आओ, बस करो बेटा बहुत विनय होचुकी, आओ बारंबार मेरे हृदय से लगकर आनन्द दो—

नव ललित प्रफुलित कमल कोमल गर्भ दल अनुहार।
तव परस सुन्दर सरस सुखप्रद सुभग सुचि सुकुमार
घनसार[1] चंदन लेप सम सीतल दुचंद अमंद।
मम अंगसौं लागेहि प्रिय अनुपम परम आनन्द ॥ १२ ॥

---

१ कपूर।

ल०—(आप ही आप) इनका स्नेह तो देखो अकारण ही मेरे ऊपर कितना अधिक है। और फिर भी मैं ने वे समझे बूझे इन से इतना बैर बढ़ा लिया कि शस्त्रग्रहण करने तक की नौबत पहुंचगई (प्रगट) तात, आशा है कि आप मेरी इस चपलता को अब क्षमा करेंगे।

रा०—वत्स, तुमसे कौन सा अपराध बन पड़ा ?

चं०—हय-रक्षकों के मुख से आप के प्रताप का बखान सुनकर इन्होंने अपनी वीरता दिखलाई।

रा०—क्या डर है यह तो क्षत्रियों को भूषणही है।

नहिं तेजधारी सहत कबहु, बढ़त अन्य प्रताप।
यह प्रकृति-जन्य सुभाव उनको, अटल अपने आप।
यदि तपत नभ करि सूर्य अविरत किरनकुल विस्तार।
किमि सूर्यमनि अपमान निज गिनि, वमत[1] अग्निअपार॥ १४॥

चं०—तात, इस वीर को क्रोध भी शोभा देता है देखिये इनके चलाये जृम्भकास्त्र के कारण सेना चारों ओर बेसुध पड़ी है।

रा०—(देख कर) बेटा लव, अपने अस्त्र हटा लो और चन्द्रकेतु तुम भी जाकर निर्व्यापार विस्मयापन्न सेना का आश्वासन करो।

ल०—बहुत अच्छा अभी लीजिये। (ध्यान में मग्न होता है)

चं०—जो आज्ञा। (जाता है)

---

१ उगलती है।

ल०—लीजिये अस्त्र का निवारण हो गया।

रा०—वत्स ऐसे अस्त्रों का प्रयोग तथा निवारण मंत्रही से होता है और गुरुपरम्परा से ही ये सिद्ध किये जाते हैं।

बेद द्विज स्वच्छानिमित, विधि आदि सुर मुनि वृन्द।
कियेउ सहसन बरसलौं, तप कठिन अतिस्वच्छन्द।
तप तेज बल अपनोहि तब, पूरन प्रभासितस्वच्छ।
लखेउ तिन इनशस्त्र-चय[1] के रूप में प्रत्यच्छ ॥ १५ ॥

तदन्तर इस समंत्र गूढ़ विद्या को भगवान कृशाश्वने सहस्र वर्ष से भी ऊपर सेवा करने वाले शिष्य विश्वामित्र के हेतु प्रदान किया और उनके प्रसाद से हमने सीखा, यह तो पहला क्रम है फिर तुमको किसने बतलाया यह हम जानना चाहते हैं।

ल०—आप से आप हम दोनों को यह अस्त्र सिद्ध हो गये।

रा०—(विचार कर) असम्भव कुछ नहीं, परम पुण्य फल की यह कोई महिमा है परन्तु द्विवचन का प्रयोग तुमने क्यों किया।

ल०—हम दो भाई हैं जो एक ही साथ जन्मे थे।

रा०—तो वह दूसरा कहां है।

(नेपथ्य में)

[भाण्डायन, भाण्डायन,
का चिरंजीव लव सँग अथोर[2]।
नृप सेन करत संग्राम घोर।

१ समूह २ बहुत।

ल०—ये महाराज हनूमान जी हैं ।

सीता—बहुत दिनों के शोकसागर में डूबे हुए लोगों का उद्धार कर अत्यन्त उपकार शील निस्संदेह ये महाभाग मरुतनंदन हैं

राम—अंजनि मन रंजन बिपुल, महाबाहु बलवान ।
जग अरु हम जिनके ऋनी, ते यह श्री हनुमान ॥३२॥

सीता—लाल ! इस पर्वत का क्या नाम है जिसके कुसुमित कदम्बों पर बैठे मयूर नृत्य कर रहे हैं; और जहां वृक्ष के नीचे, मूर्छित दशा में फीकी कान्ति वाले आर्यपुत्र, जिन का केवल प्रभाव-सौन्दर्य शेष रह गया है और जिन्हें रोते हुए तुम सम्हाल रहे हो, दर्शाये गये हैं ।

ल०—अरजुन पहुप सुगन्धित गिरि सो माल्यवान जिहिनामा ।
जासु सिखर आश्रयित१सावनघन-श्याम हृदय अभिरामा ॥

राम—विरमौ विरमौ तात ! कहोजनि, सुनन हेत बलनाहीं ।
लगत मनहुँ सिय-विरह-वेदना सालति पुनि उरमाहीं॥३३॥

ल०—यहां से आगे स्वयं आर्य्य के और कपिराक्षसों के असंख्य अद्भुत कार्य क्रम पूर्वक दिखाये गये हैं । किन्तु जान पड़ता है कि महारानी थकगई हैं, इस कारण निवेदन है कि आप कुछ बिश्राम कर लीजिये ।

सीता—आर्यपुत्र ! इस चित्रदर्शन से मुझ गर्भिणी की एक इच्छा हुई है कहिये तो कहूं ।

---

१ ठहरा हुआ

दिव्यायुध-उग्रदुति-नीराजित[1] गुनधारो,
तो सफल धन्य धन्य मम धनुवान है ॥ १८ ॥

रा०—यह क्षत्रिय कुमार तो बड़ा पराक्रमी विदित होता है।

तृन ह्व सम तीनहुँ लोकनि को बल, जो नहिं आंखिनके तर लावत।
अति उद्धत धीरगती सों मनौ, अचला[2] कों चले झुकधीरनवावत।
निज बालक वैसही में गिरिके सम गौरवता की छटाछिटकावत।
तनधारी किधौं यह दर्प लसै अथवा वरवीरताको मदआवत॥१९॥

ल०—(आगे बढ़ कर) आर्य की जय हो।

कु०—आयुष्मन्, यह चारों ओर क्या युद्ध जुद्ध की बात चल रही है।

ल०—यह तो जो कुछ है सो है परन्तु आप को निज दर्पभाव त्यागकर इन महा पुरुष के साथ विनय का वर्ताव करना उचित है।

कु०—सो किसलिये ?

ल०—देखो ये श्रीरघुनाथ जी महाराज बैठे हैं—वह हम दोनों पर बड़ा स्नेह रखते हैं, और आप से मिलने को उत्कण्ठित हो रहे हैं।

कु०—(सोच कर) क्या वेही जो रामायण की कथा के नायक और वेद रत्नागार के रक्षा करने वाले हैं।

ल०—हां वेही।

---

१ आरती किया गया २ पृथ्वी।

कु०—वे तो बड़ी ही प्रशंसा के योग्य पुण्य-दर्शन महात्मा हैं-परन्तु उन के समीप किस प्रकार चलना चाहिये यह समझ में नहीं आता।

ल०—जिस रीति से पिता आदि गुरुजनों के निकट जाते हैं उसी रीति से चलिये।

कु०—ऐसा क्योंकर हो सकता है।

ल०—परमपराक्रमशाली, उर्मिला के पुत्र, चन्द्रकेतु बड़े ही सज्जन हैं, और वह हमारे साथ मित्रभाव मानते हैं, इसलिये उनके सम्बन्ध से ये राजर्षि हमारे धर्म के पिता हुए।

कु०—और ऐसे क्षत्रियों से विनयभाव अवलम्बन करना भी कुछ लज्जा की बात नहीं है।

ल०—तो फिर आइये और ऐसे पुण्य-चरित्र महापुरुष के दर्शन कीजिये, जिनके चहरे से गम्भीरता टपकी पड़ती है।

कु०—(देखकर)

कस मृदुल मोहन रूप है,
प्रिय पुण्यशील अनूप है।
कथि रम्य रामायण खरी,
कवि सफल बानी निजकरी॥ २०॥

(आगे बढ़कर) वाल्मीकि मुनि का शिष्य कुश, आपको प्रणाम करता है।

रा०— चिरंजीव रहो बेटा, आओ हमारे पास आओ।

तुव निरखि रूप रसाल,
जनु सजल मन घन-माल।
करै नेह-बस यह जीय,
तोकों लगावहुँ हीय ॥२१॥

(छाती से लगाकर आप ही आप) तो क्या यह बालक मेरा पुत्र ही है।

मो तन सों उत्पन्न किधौं, यह बाल-स्वरूप में नेह को सार है।
कै यह चेतना धातु को रूप, करै कढ़ि बाहिर, मंजु विहार है।
पूरी उमंग हिलोरत हीय के भावको केधौं लसै अवतार है।
जाहींसों भेटि सुधारस ले जनु सिंचत मो सब देह अपार है२२

ल०—तात, सूर्य की किरणें आपके माथे पर पड़ रही हैं आइये इस शालबृक्ष की छाया में छिन भर बैठकर विश्राम कर लीजिये।

रा०—जो कुछ वत्सों को अच्छा लगे।

(सब चलकर बैठते हैं)

रा०—(आप ही आप)

विनय युक्त, यद्यपि कुशलव की बरनि न जाई।
बैठनि उठनि अमोल चलनि बोलनि सुखदाई ॥
तोऊ उच्च उदारभाव इन माहिं विलच्छन।
दरसावत नृप चक्रवर्ति के से शुभ लच्छन ॥२३॥

सुलच्छन राजन के सों सुहाई अनौखी अकात्रिम[1] सुन्दरताई।
सबै जनके मन भाई, बढ़ावति दोउनि के तन की कमनाई ॥

---

१ स्वाभाविक।

मयूख-छटा सन छाई लसे जिमि उज्वल रत्न प्रभा रुचिराई ।
लहै मकरन्द के बिन्दनसों अरविन्द निकाई अनूपमताई ॥२४॥
ये दोनों अधिकतर रघुकुल कुमारों की अनुहार गये हैं, क्योंकि—

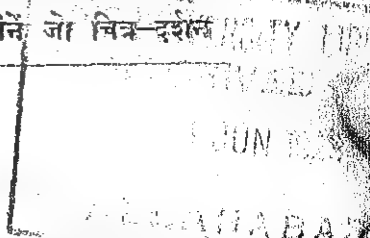
कल कपोत सुकंठ सम, जिनरंग विलसत श्याम ।
बर वृषभ के से कंध सोहत गठित अंग ललाम ।
मन मुदित धीर मृगाधिपति सम, करत दृष्टि अलोल ।
अरु मंगलीक मृदंग सम, गम्भीर बोलत बोल ॥२५॥

(अच्छी भांति निहारकर) अरे, केवल हमारे ही अंग के समान इनका रूपरंग नहीं है किन्तु—

निपुनता युत लखनसों सिसु युगल सुन्दर गात ।
सिय रूप को अनुरूप इन में अति प्रतच्छ लखात ।
यह लगत अनुपुनि दृष्टिगोचर होत सुखमा सबा ।
हिय-प्रिय,प्रफुल्लित,मृदुल,मंजुल,मो-प्रिया-मुखप्रबा॥२६

लसें रद[1] उज्जवल मोती समान, वुही छवि मोहनी मंजु रसाय
मनोहर हैं तिनसों दोउ ओठ, वुही श्रुति[2]-शोभा रही सरसाय ।
भले दृग श्यामल औ रतनार सुहावत, यद्यपि तेज जनाय ।
तऊ इनमें बिलसे वुही चारु प्रियाके कटाच्छन की समताय२७

और यह तो वाल्मीकि जी के रहने का वन है, जहां सीता देवी त्यागी गई थीं, इन दोनों बालकों का रूप रंग भी वैसा ही है, यद्यपि इनके कथनानुसार ये जृम्भकास्त्र इन पर स्वयं प्रकाशित हुए हैं, तथापि यह मेरा पूरा विश्वास नहीं है । सम्भव है कि मैंने जो चित्र–दर्शन



१ दांत २ कान ।

ल०—ये महाराज हनूमान जी हैं ।

सीता—बहुत दिनों के शोकसागर में डूबे हुए लोगों का उद्धार कर अत्यन्त उपकार शील निस्संदेह ये महाभाग मरुतनंदन हैं

राम—अंजनि मन रंजन बिपुल, महाबाहु बलवान।
जग अरु हम जिनके ऋनी, ते यह श्री हनुमान ॥३२॥

सीता—लाल ! इस पर्वत का क्या नाम है जिसके कुसुमित कदम्बों पर बैठे मयूर नृत्य कर रहे हैं; और जहां वृक्ष के नीचे, मूर्छित दशा में फीकी कान्ति वाले आर्यपुत्र, जिन का केवल प्रभाव-सौन्दर्य्य शेष रह गया है और जिन्हें रोते हुए तुम सम्हाल रहे हो, दर्शाये गये हैं ।

ल०—अरजुन पहुप सुगन्धित गिरि सो माल्यवान जिहिनामा।
जासु सिखर आश्रयित१सावनघन-श्याम हृदय अभिरामा॥

राम—विरमौ विरमौ तात ! कहोजनि, सुनन हेत बलनाहीं।
लगत मनहुँ सिय-विरह-वेदना सालति पुनि उरमाहीं॥३३॥

ल०—यहां से आगे स्वयं आर्य्य के और कपिराक्षसों के असंख्य अद्भुत कार्य क्रम पूर्वक दिखाये गये हैं। किन्तु जान पड़ता है कि महारानी थकगई हैं, इस कारण निवेदन है कि आप कुछ बिश्राम कर लीजिये ।

सीता—आर्यपुत्र ! इस चित्रदर्शन से मुझ गर्भिणी की एक इच्छा हुई है कहिये तो कहूं ।

---

१ ठहरा हुआ

रा०—(आपहीआप) हा, यहतो ऐसी बेलाग बातहुई जिस से कुछ भी निर्णय नहीं किया जासकता, अब बसकरो पूछने से क्या होगा ? अरे दग्ध हृदय, ऐसा तू अकस्मात स्नेह से उबल पड़ा और एक साथ खुलगया कि लड़के भी मुझपर तरस खाने लगे । अच्छा तो कुछ और छेड़ूं (प्रगट) वत्स, तुम दोनोंने जो भगवान वाल्मीकि की पद्यमयी मनोहारिणी रविकुलकीर्त्ति-प्रभाविस्तारिणी रामायण पढ़ी है उस का कुछ अंश कौतूहलवश मुझे भी सुनने की इच्छा है ।

कु०—वह सम्पूर्ण ग्रन्थही हमने पढ़ा है । लीजिये, बालकाण्ड के अन्तिम अध्याय में निम्नलिखित भाव के ये दो श्लोक स्मर्ण आते हैं ।

रा०—अच्छा बोलो बेटा ।

कु०—रघुकुल-कमोद-विधु जो न्यायी उदारभारी ।
सियही सुभावही सों तिन राम की पियारी ॥
तिहनेह की सलौनी लतिका ललाम छाई ।
गुनमंजु पाइ तियके पुनि और लहलहाई ॥३१॥
सिय के तथैव सोहे निज प्रान सों हु प्यारे ।
अरविन्दनैन-वारे अवधेश के दुलारे ॥
जो प्रीति योग तिनको अन्योन्य[1]-प्रतिसुहायो ।
तिहि कहि सकै न कोऊ हियको हियेमेंभायो * ॥३२॥

---

* प्रकृत्येव प्रियासीता रामस्याऽन्महात्मनः
प्रियभावः सतुतथा स्वगुणैरेव वर्धिऽतः
तथैव राम सीतायाः प्राणेभ्योऽपिप्रियोभवत्
हृदयंत्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परं

1 एक दूसरे के साथ

रा०—हाय, यह तो हृदय-मर्मच्छिद बड़ाही कठिन कष्ट है। हा देवी, निस्सन्देह तुम ऐसी थीं। अहो, अकस्मात् अवस्थान्तर प्राप्त होने से वियोगान्तमयी संसारिक घटनायें सन्ताप को कितना बढ़ाती हैं।

कहँ निरतशय विश्वास-मय स्वच्छन्द, सो आनन्द।
कहँ ते कुतूहलप्रद, परस्पर मनविनोद अमन्द।
सुख दुःख में वह एकसी, सह-हृदयता कित हाय।
किहि लागि पापी प्रान, अजहुँ, तन रह्यो बिरमाय॥२३॥

हाय २—

सरस सुभग सुन्दर सरल, मृदुल मनोहर स्वच्छ।
प्यारी के अनगिन्त गुन, उदय करन थे दच्छ॥
बहुदिन को बिसरयो समय, सुमिरत जो दुख-दैन।
आइ हिये करक्यो बुही, सुनि इनके ये बैन॥ २४॥

उठते से उरोज कछूक तबै मृगनैनि के पा तरुनाई[1] खरी।
दिन थोरेइ में कछु पीन भये, खिली कंजकली की लुनाई हरी।
रति-रंग-तरंग भरे हियपै, सजि सेन, अनंग चढ़ाई करी।
परिपूरन जोम जनाई नहीं, प्रतिअंग में लाज निकाई भरी॥२५॥

कु०—और यह मन्दाकिनीकूलवर्ती चित्रकूट के वनविहार में सीता देवी से निम्न भाव का राम ने श्लोक कहा है।

कैसी चोखी चीकनी, फटिक सिला दरसाय।
जनु तुम्हरे ही काज यह, धरी बिरञ्चि बनाय॥

---

1 जवानी।

चहुँ दिसि यापै खिलि रहे, देखौ सुन्दर फूल ।
चम्पा-द्रुम ने मनु सजी, सैय्या तुव अनुकूल * ॥३६॥

रा०—(लज्जा, स्नेह और करुणा से) ये बालक बड़े भोले हैं । विशेष कर वनवासी होने के कारण ये लोग यह नहीं जानते कि कौन बात कहने योग्य है और कौन नहीं । हा देवी तुम्हें उन प्रदेशों का स्मरण है, जो हम दोनों के विश्वस्त स्वच्छन्द विहारों के अभी तक साक्षी हैं ।

हाय रे —

कुंकुम मले न जासु तउ, उज्वल अरुन कपोल ।
श्रमसीकर सीतल भयो, जो अनुपम अनमोल ॥
मन्द मन्द लागि पवन जहँ, मन्दाकिनि को आय ।
प्यारी घुंघरारी अलक, जासु दयौं बिखराय ॥
ललित ललाट मयंक[1] छुवि, आकुल लहि तिन भार ।
ललचाति चुर सी परी, इत उत चलि बहु बार ॥
निराभरन[2] श्रुति तउ सुभग, अस तुम्हरो मुखचन्द ।
सुरति करति हिय में अजहुँ, भरत अनेक आनन्द ॥ ३७॥

(रुके हुए के समान कुछ ठहर कर करुणा से)

जब ध्यान में तन्मय होत, स्वकल्पित जासु स्वरूपहि दीसि परै ।
विरहा को दयालु में धीरज दे, हमें प्यारो सदा दुख दूरि करै ।

---

* त्वदर्थ मिव विन्यस्तः शिला पट्टोऽयमग्रतः
यस्या यमाभितः पुष्पैः प्रवृष्ट इव केशरः ३६

1 चन्द्रमा 2 भूषण रहित, बिना जेवर ।

श्रम नष्ट भये पै कछू न कछू, बन जीरन[1] को जग रूपधरै।
घबराइ महा विलखै दुखिया जियमाँ तुसानल माहिं जरै॥ ३८॥

(नेपथ्य में)

[गुरु वशिष्ठ वाल्मीकि ऋषि, कौशल्या मिथिलेस।
अरुन्धती युत सभय सब, सुनि सिसु-कलह-कलेस॥
वृद्ध अवस्था बस निबल, रहे दूरि सों आथ।
चल्यो जात नहिं श्रम अखिल, तउ अति आतुर हाय॥ ३९॥]

रा०—ओहो, क्या भगवती अरुन्धती, भगवान वशिष्ठ, मात और विदेहराज भी यहीं हैं, हाय २ मैं उनसे किस प्रकार मिल सकूंगा (करुणा से देख कर) अहह! तात जनकजी भी दैवयोग से यहां ही आरहे हैं, हाय! यह मुझ अभागे के लिये वज्राघात है!

जाकी करी सराहना, गुरुजन प्रमुदित होय।
लखि स्वव्याह में तातकी, अस मिलनी रमनीय॥
सो पितुसख अरु विपति यह, कैसे देखत नैन।
किह अभाग बस रामकी, छाती आजु फटै न॥ ४०॥

(नेपथ्य में)

[हाय २—

केवल तेज विसेससों, होत जासु अनुमान।
छवि मलीन अस रघुपतिहिं, औचकही पहचान॥
पहले के मूर्छित परे, जनकनृपहिं चेताय।
शोक विकल वेसुधगिरीं, मातहु हा घबराय॥ ४१॥]

---

१ पुराना।

रा०—हा तात, हा माता, हा जनक, !

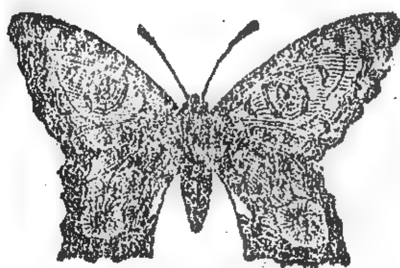
निमिवंस औ रघुवंस की जो सतत-मंगल कारिनी ।
तिहुँ भुवन मधि कमनीय कीरति-कौमुदी विस्तारिनी ।
ता निरपराधिनि सीय हित यह निठुर पापी राम है ।
मो तुल्य निरमोहीनु पै तुव मोह को कहा काम है ॥ ८२ ॥

(विचारकर) और नहीं तो थोड़ा बहुत ही आगे बढ़के अब इनसे मिलूं ।

(उठते हैं)

कु० और ल०—इधर से तात, इधर से ।

[करुणा से भरे सब बाहर जाते हैं]



अंक ७

(स्थान—रंगभूमि)

(लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—आज भगवान वाल्मीकि जी ने हमें, तथा ब्राह्मण क्षत्री आदि सम्पूर्ण पुरवासियों और सुरासुर नाग किन्नर आदि समग्र चराचर प्राणी मात्रको, अपने तपोवल के प्रभाव से एकत्रित किया है। और महाराज रामने आज्ञा दी है कि आज भगवान वाल्मीकि अपना बनाया नाटक अप्सराओं से खिलायंगे, उसे देखने के लिये हमारा भी निमन्त्रण है सो गंगाजी के किनारे रंगभूमि रचना कर सब दर्शकों का यथोचित प्रबन्ध करदो। हमने मनुष्य देवता और सबजीव समूह को यथायोग्य स्थान में बैठादिया और—

जे नृप-धर्मके पालन में वत्सलता-अनुरंजनता सों छये हैं।
ता संग धारि तपोवन-के-मुनि-वीर-भले जग धन्य भये हैं।
बालम्रुमीक महाकवि के कविता-गुन गौरव-नेह सये हैं।
देखहु आज जो वंस सिरोमनि राम यहां खुद आइ गये हैं ॥१॥

(श्री राम का प्रवेश)

राम०—वत्स लक्ष्मण, दर्शक तो सब अपने २ स्थान पर बैठ गये न ?

ल०—हांजी, सब बैठ गये।

रा०—अच्छा तो इन प्यारे कुशलव को भी कुमार चन्द्रकेतु के बराबर ही स्थान मिलना चाहिये।

ल०—महाराज का स्नेह जानकर पहले ही इसका प्रबन्ध कर दिया गया है अब तो आप भी राजगद्दी पर विराजिये।

रा०—(बैठते हैं)

ल०—अच्छा भाई, अब अपना नाटक प्रारम्भ करो।

सूत्रधार—(सामने आकर)

महाशय गण, यथार्थवादी भगवान वाल्मीकि ऋषि सब चराचर प्राणी मात्रको आज्ञा देते हैं, कि हमने अपनी आर्ष दृष्टि से देखकर अद्भुत करुणारस से पूर्ण यह जो कुछ पवित्र नाट्य प्रबन्ध आप के सामने उपस्थित किया है, उसका वृतान्त सब सच्चा और बड़े महत्व का है; इसलिये आप सब लोगों को उसे सावधान होकर देखना चाहिये।

रा०—बहुत ठीक कहा, ऋषि लोग ऐसे ही होते हैं उनके लिये केवल दिव्यदृष्टि से, क्या दृष्ट और क्या अदृष्ट सब धर्म प्रत्यक्ष ही के समान हैं। उन महाभागों की सुधा-मयी उत्कर्षतत्त्ववाली, रजोगुण से परे सत्व-गुणयुक्त और बोधकशक्तिशालिनी वाणी किसी देश व किसी स्थान अथवा किसी काल में नहीं रुकती, अतएव उस में शंका करना व्यर्थ है।

(नेपथ्यमें)

[हा आर्यपुत्र ! हा कुमार लक्ष्मण ! मुझ अभागिनी के बालक हुआ चाहता है, इसलिये उसकी वेदना से बड़ी

अति पुनीत१ सिया निज जन्म सों,
तिहि भला पुनि पावन१ को करै।
लहिसकै कहुं अन्यपदार्थ सों,
अनल, तीरथ-तोय२ विशुद्धता ॥१३॥

हे यज्ञभूमि से उत्पन्न हुई देवी! क्षमा करना, यह तो जन्म भर का कलंक तुम्हारे सिर हो चुका; तुम्हारी पवित्रता के विषय में मुझे रत्ती भर भी संशय न था, परन्तु—

कुल कीरति रूप चहै धन जे,
ते महीप प्रजा को करैं मनभावन।
यहिसों मम वैन कहे जो अजोग,
मही तुष जोग अबै लौं सतावत।
नित पुष्प सुगन्धित कों जग माहिं,
सुभावहि सों सब सीस चढ़ावत।
बनि कै निरमोही न कोऊ जनो,
तिन कों दलि पाइनु के तर दावत ॥१४॥

सीता—आर्यपुत्र, इन बातों को जाने दीजिये, होना था सो होगया। आइये, अब आप के चित्र को देखें।

(सब जाते हैं)

स्थान राज-मंदिर, चित्रशाला।

(राम लक्ष्मण सीता आते हैं)

ल०—यही तो हैं चित्र।

सीता—(देख कर) देखो जी, ये कौन हैं जो ऊपर पास२ खड़े हुए आर्यपुत्र की प्रार्थना सी कर रहे हैं ?

---

१ पवित्र २ जल

दो०दे०--गहि धीरज हीय सुता अपने, अब सोच की मारी मरै जनि प्यारी। विसवास हमारो करै नहिं क्यों, खरी तू जग में बड़भागनि भारी। यह तैने जने सुठि वालक जो जलमांहि पुनीत विदेह दुलारी। इन दोउन सौं चलि है फलि है वसुधातलपै रघुवंस अगारी ॥३॥

सी०—अहो भाग जो दो पुत्र जनमे, हाय आर्यपुत्र! (मूर्छित होती है)

ल०—(चरणों पर गिरकर) आर्य, आर्य, अहा भगवान ने फिर दिन फेरे, रघुवंश के कल्याण का अंकुर फिर से लहलहा उठा (देखकर) हाय, क्या आर्य वेसुध में होरहे हैं और नेत्रों से अश्रुधारा वहरही है।

पृ०—पुत्री, धीरज धरो।

सी०—भगवती तुम कौनहो और ये कौन हैं।

पृ०—यह तुम्हारी सुसराल की कुलदेवी भागीरथी हैं।

सी०—भगवती, मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूं।

गं०—बेटी जैसा तुमसी पातिव्रता के लिये चाहिये वैसाही। तुम्हारा कल्याण हो।

ल०—(अलग) हम लोगों पर बड़ी कृपा हुई।

गं०—यह तुम्हारी जननी वसुन्धरा हैं।

सी०—हाय, मा, आपने मुझे इस दशा में देखा।

पृ०—आओ मेरी लाड़िली बेटी (छाती से लगाती है)

ल०—(सहर्ष) अहा, पृथ्वी और गंगा दोनों का महारानी पर अनुग्रह है।

रा०—(देखकर) यह तो अत्यन्त करुणा जनक दृश्य है।

गं०—यदि विश्वम्भरा पृथ्वीदेवी भी व्यथित होती हैं तो अपत्य स्नेह सब से अधिक होता है। सचमुच इस मोहमाया की ग्रन्थि से सब प्राणीमात्र का हृदय गुथा हुआ है। संसार का बन्धन तोड़ना अत्यन्त दुष्कर है, बेटी वैदेही और देवी वसुन्धरा, धीरज धरो, अपने हृदय को सम्हालो।

पृ०—दैवी गंगा, सीता को जनकर कैसे धीरज धरूं—

सोऊ लयो सहि, जो सियने कियो राक्षसके बहुकाल निवास। कैसे सहो अब जाय बतावहु ताही को दूसरो ये बनवास ॥

गं०—या जगमें विधिना, सजनी, करनी निज हीय बिचारत जोऊ। सो विधिसों बुद्ध ह्वैके रहे, नहिं ताहि मिटाय सकै जन कोऊ ॥ ४ ॥

पृ०—ठीक कहती हो सखी, पर क्या रामचन्द्र को यह उचित था ? हाय उन्होंने यह न सोचा कि:—

भयो ब्याह जासंग में, बालपने के माँहि।
धरनी-सुता अयोनिजा, यामें पातक नाँहि ॥
राजऋषी जाको जनक,[1] जनक सिखावत जोग[2]।
ताकी का कहि है सुता, ऐसी निपट अयोग ॥

---

१ पिता २ योग विद्या।

लंका सों निकरत करी, अग्नि--परीच्छा जास।
जिह तन लगि चन्दन भई, अन्धी कहा हुतास[1] ॥
भयो जबै घनश्याम, तउ, संग परी जो रोइ।
कियो सुहातो पीयको, सदा अपनपो खोइ॥
पियरी तन वलहीन अति, कँपति गर्भके भार।
याही सों रघुवंस की, सन्तति चलै अगार॥
इतनी बातनि में न कछु, राम कर्यो पारेमान।
लरकबुद्धि परि काउ को, गिन्यो न मान अमान॥५॥

सी०—हाय आर्यपुत्र की सुधि क्यों दिलाती हो।

पृ०—हा, अब भी आर्यपुत्र तेरे कुछ लगते हैं ?

सी०—(लज्जा से आंसू भर) तो जैसी मा कहैं।

रा०—(अलग) भगवती वसुन्धरा ठीक ! मैं इसी योग्य हूं !!

गं०—प्रसन्नहो, देवी भूतधात्री, आपतो संसार की देह हो, फिरभी अजान की भांति अपने जामाता पर क्रोधकरती हो। देखिये,

लोग लुगाइन में चरचा अपकीरति की अति फैलिरही है।
लंका में अग्नि परीच्छाभई कोउ मानत ताहि यहां नही है।
'राखे प्रजा अनुरञ्जन को धन' या रघुवंस ने टेक गही है।
ऐसी दशा में विचारे रघूपति को करनी तब काह चही है॥६

ल०--देवताही प्राणियों के अन्तःकरणके मर्मको भलीभांति जानसकते हैं, और विशेष कर गंगादेवी, इस कारण भगवती आपको मेरा प्रणाम है।

---

१ अग्नि।

रा०—सचमुच्हीं आपके अनुग्रह का प्रवाह महाराज भागीरथ के
वंश में निरन्तर बहता रहा है ।

पृ०—देवी भागीरथी, मैं तुम्हारे ऊपर नित्य प्रसन्न ही हूं परन्तु
इस लड़की का असह्य दुख देखकर छाती फटती है मैं
क्या नहीं जानती हूं कि राम का प्रेम सीता पर कितना है ?

खाव खवाइन[1] के चहुँ ओरसों, हैके महा मन मांहि दुखारी
जानि बलीं जिय[2] देवप्रकोप कों बेवस राम तजी सिय प्यारी ।
जो अपनो तन राखिरहे, यह तासु अलौकिक धीरज भारी ।
और प्रजा कृत पुण्य प्रताप है मंजुल भूप सुमंगल कारी ॥ ७

रा०—(अ०) माता पिता लड़कों पर दया न करें तो कैसे काम चले ।

सी०—(रोती हुई हाथ जोड़कर) मां, मुझे अपने में लीन करलो ।

रा०—(अ०) देखें और क्या कहें !

भा०—नहीं बेटी, ऐसा मत कहो, तुम सहस्र वर्ष तक अभी
संसार में और रहो ।

पृ०—बेटी अभी तो तुझे इन बच्चों को पालना है ।

सी०—मैंतो अनाथ हूं, फिर इनका कौन होगा ।

रा०—रे वज्र हृदय, अभीतक फटता नहीं !

भा०—तुम तो बेटी, सनाथ हो, फिर अपने को अनाथ क्यों कहती हो

सी०—मैं अभागिनी हूं, सनाथ किस प्रकार होसकती हूं ।

दोनों दे०— जगत की अब मंगल-कारिणी,
फिरहु क्यों अपको अपमानती ।
विमल पाय सिये तुव संगकों,
बढ़ति और हमार पवित्रता ॥ ८ ॥

---

१ पीठ पीछे बुराई करने वालों की बुराई। २ मनमें ।

अंक १

(स्थान—राजभवन)

[राम और सीता आसन पर बैठे दिखलाई पड़ते हैं]

राम—देवी, धीरज धरो, इतना सोच क्यों करती हो। आपके पूज्य पिता आपही हम लोगों के बहुकालव्यापी विरह को नहीं सह सकते; किन्तु क्या करें,

नित्यकर्म को नियम कठिन जो अति ही भारी।
स्वतन्त्रता द्विजगृही[1]मात्र की हरतु पियारी!
विघन तनक सो परत घने दोसनि उपजावत।
या चिन्ता सों ग्रसित कारमिक[2]चैन न पावत॥८॥

सीता—आर्यपुत्र, मैं इसे अच्छी तरह जानती हूं; किन्तु अपने लोगों से बिछुड़ कर कुछ दुःख होता ही है।

राम—प्यारी, आपने जो कहा वह ठीक है। हृदय विदीर्ण करने वाली संसारी माया ऐसी ही प्रबल है, इसी कारण इससे भयभीत हो बुद्धिमान्-जन सब कामनाओं को छोड़ छाड़ कहीं एकान्त बन में जाकर विश्राम करते हैं—

(कंचुकी का प्रवेश)

कं०—भैया रामचन्द्र, (इतना कहके दांतों के नीचे जीभ काट कर) महाराज !

१ गृहस्थ द्विज २ कर्मकाण्डी

ल०—(राम से) आर्य, आपने सीताजी से कहा भी था कि ये सब तुम्हारी सन्तान की सेवा में रहेंगे, वैसाही हो रहा है।

दो० दे०—यह करत मंजु प्रनाम तुमको शस्त्रदेव जु आज।
धनि धन्यहौ जिनको गह्यो कर कमल में रघुराज।
ये बाल जब चिन्तन करें, तब दरस दीजौ आन।
हम देत अब आसीस, नित नव होइ तुव कल्यान॥११॥

रा०—लहि गंगमहि-प्रसादै विस्मै अपार आवै।
सुत जन्म-सत्यता ह्वै आनन्द हिय जगावै॥
इन सों गुही गुहाई करुना-तरंग भारी।
भरि छोभसों कहै अब कैसी दशा हमारी॥१२॥

दो० दे०—मौज करो बेटी, इन दोनों पुत्रों को राम ही के समान जानो।

सी०—अच्छा, मा यह तो सब ठीक है किन्तु फिर इन दोनों का क्षत्रियोचित संस्कार कौन करेगा।

रा०—हा, जो वशिष्ठ-रक्षित रघुवंस की निकाई।
श्री के समान सुन्दर सब भांति सों सुहाई॥
सुत-संस्कार-कर्त्ता ता सिय ने न पायो।
कैसो प्रपंच विधिना ऐसो समै दिखायो!॥१३॥

गं०—बेटी, तुम इसकी चिन्ता न करो, दोनों बालक दूध छूटने के पीछे महात्मा वालमीकि को सौंप दिये जांयगे वही इनके क्षत्रियोचित कर्म को करेंगे।

जिमि महाऋषी वशिष्ठ अरु, सतानन्द मतिवान।
तिमि गुरु रघुनिमिवंस के, वालमीकि भगवान॥१४॥

रा०—भगवती ने अच्छा विचार किया है ।

ल०—आर्य, इन घटनाओं से मुझे बिलकुल निश्चय होता है कि ये लवकुश वही हैं क्योंकि,

इन्हें जन्म सों सिद्ध अस्त्र तुम जानिये ।
बालमीकि के शिष्य इन्हें ही मानिये ।
तुम्हरी ही अनुहारि गये दोउ धीर हैं ।
बारह बारह बरस बैस के बीर हैं ॥

रा०—वत्स, यह दोनों मेरे पुत्र हैं कि नहीं इस सन्देह के कारण कुछ समझ नहीं पड़ता, इतना घबड़ा रहा हूं ।

पृ०—आओ बेटी, चलो अब रसातल को पवित्र करो ।

रा०—हाय प्रिया तू रसातल चली गई !

सी०—मा, ऐसा करो कि मैं तुम में समाजाऊं, मुझसे संसार के दुख सहे नहीं जाते ।

रा०—देखें क्या उत्तर देती है ।

पृ०—दूध छुटने तक मेरे कहने से इन बच्चों की रक्षा कर, पीछे जैसा तुझे रुचे वैसा करना ।

गं० यह भी ठीक है ।

(गंगा, पृथ्वी, और सीता जाती हैं)

रा०—अरे क्या वैदेही पृथ्वी में समाही गई ! हा दंडक वन वास की प्यारी सखी ! सती शिरोमणि ! हा कष्ट ! मुझे अकेला छोड़ तू लोकान्तर को चली गई ! हाय देवी हाय !

ल०—रक्षा करो भगवान वालमीकि रक्षा करो, हाय क्या यही आपके नाट्य प्रबन्ध का सार परिणाम था !

(नेपथ्य में)

[सब बाजों गाजों को बन्द करो। अरे सब चराचर प्राणी मात्र, क्या मनुष्य और क्या देवता सब के सब देखो भगवान वालमीकि जी की आज्ञा से एक महान अद्भुत और पवित्र घटना उपस्थित होती है।]

ल०—(देखकर) ओहो,

करत 'घर घर' घोर घूमत झाग देत अपार।
मनहुँ मंथन सों विडोलित उठति गंगाधार॥
सकल सुर गंधर्व ऋषिमुनि यच्छ के समुदाय।
अन्तरिच्छ मझार छाये लखहु कौशलराय॥
गंग भुवि देवीनि के सँग भुवन-त्रय विख्यात।
उदित अब तिह सलिलसों आहा,सिया दरसात॥१६॥

(फिर नेपथ्य में)

[जय वशिष्ठ मुनि पत्नि अरुन्धति जगवन्दिनी।
सौंपत तुमकों पुण्यव्रता मिथिलेस-नन्दिनी॥
काहू विधि की शंक न तुम अपने हिय आनौ।
हमहि वसुमती त्रिपथगामिनी निश्चय जानौ॥ १७॥]

अ०—अहा, क्या ही चमत्कार है देखो आर्य, देखो, (देखकर) हा कष्ट ! आर्य तो अभी तक बेसुध ही पड़े हैं।

(अरुन्धती और सीता का प्रवेश)

अ०—तजि संकोच सकल निज बेटी प्यारी जनक दुलारी।
आइपर्यो कर्त्तव्य तिहारौ करौ शीघ्रता भारी।
आओ अपने मृदुलपानि अब रामसरीर छियाओ।
जैसे बनै जतन करि वैसे मेरो वत्स जियाओ ॥ १८ ॥

सी०—(भय से पास जाकर राम के शरीर पर हाथ फेरती है) सावधान होवो आर्यपुत्र सावधान हो।

रा०—(आंखें खोलकर आनन्द से) अहो यह क्या है ? (सीता को देख कुछ मुसक्याकर हर्ष और आनन्द से चकित हो) आहा क्या है ! स्वप्न है ! कि सचमुच ही वैदेही है (फिर देखकर लाज से) क्या मेरी माता भगवती अरुन्धती शृङ्गीऋषि और शान्ता समेत सब बड़े बूढ़े प्रसन्न हो रहे हैं ?

अ०—वत्स ये देखो महाराज भगीरथ के कुल की देवता, सर्वदा अनुग्रहशील भगवती भागीरथी हैं।

(नेपथ्य में)

[जगत्प्रभु रामचन्द्र, स्मर्ण करो, तुमने चित्र देखने के समय कहा था कि हे गंगामाता ! तुम वधू सीता पर सर्वदा अरुन्धती के समान अपनी स्नेहमयी दृष्टि रखना सो मैं आज अपने ऋण से उऋण हो गई ।]

अ०—और ये बेटा तुम्हारी सास वसुन्धरा है।

(फिर नेपथ्य में)

[आयुष्मान् तुमने सीता त्यागते समय कहा था कि भगवती वसुनधरा तुम अपनी प्यारी बेटी जानकी को

देखती रहना, तुमको सौंपता हूं, सो तुम भूपति होने से मेरे स्वामी के समान और जामाता होनेसे मेरे पुत्र के समान हो इसलिये मैंने तुम्हारा कहना कर दिया।]

रा०—मुझ जैसे महा अपराधी पर देवियों ने कैसे कृपा की? मैं आप दोनों को प्रणाम करता हूं।

(फिर नेपथ्य में)

[दो० दे० —चिरजियो प्यारे, और सकुटुम्ब सुख भोग करो।]

अ०—प्यारे पुरवासीगण, इस समय जिस प्रकार भगवती भागीरथी तथा देवी वसुन्धरा ने इतनी बड़ाई करके मुझ अरुन्धती को सीता सौंपदी उसे तो आपने प्रत्यक्ष देख ही लिया, इसके पहले भगवान अग्निदेव द्वारा सीता के पुण्य चरित्र की परीक्षा होचुकी है। और अब भी देखिये ब्रह्मादिक देव इसके गुणगान कर रहे हैं। अब आप लोगों से पूछना यह है कि ऐसी पुनीत पतिव्रता, यज्ञ से उत्पन्न हुई परम प्रसिद्ध सूर्यवंश की बधू सीता देवी को फिर ग्रहण करना उचित है या नहीं? इस विषय में आप की क्या सम्मति है।

ल०—इस प्रकार भगवती अरुन्धती के धिक्कारने से लज्जित होकर अब तो पुरवासी तथा सब संसार के लोग महारानीके हाथ जोड़ रहे हैं, और इन्द्रादिक लोकपालों के साथ मरीचादि सप्तर्षि स्वनाम-धन्य सीता जी के शिर पर पुष्प बरसा रहे हैं।

अ०—जगदीश रामचन्द्र,

यह तुम्हरी सहधर्मिनी, प्रियाधर्म अनुसार ।
परम प्रेम सों कीजिये, याको अङ्गीकार ॥
जो सुवरन की प्रतिकृती, तुव ढिग, ताके ठौर ।
देउ पुण्य प्रकृती सियाहिं, आसन रघुकुल मौर ॥१०॥

सी०—(आप ही आप) देखें आर्यपुत्र मेरा दुख मेटते हैं या नहीं ।

रा०—बहुत अच्छा भगवती का आदेश सिर माथे ।

ल०—हम भी कृतार्थ हुए ।

सी०—मैं तो जी गई ।

ल०—महाराणी, यह निर्लज्ज तुम्हारे चरणों पर गिरता है ।

सी०—वत्स, तुम्हारी चिरायु हो ।

अ०—भगवन् वाल्मीकि, सीता के गर्भ से जो रामचन्द्र जी के लड़के कुशलव हैं उन्हें भी ले आइये ।

(जाती है).

रा०और ल०—अहा हम ने ठीक विचारा था ।

सी०—(आंखों में आंसूभरकर घबराईसी) कहां है मेरी प्यारी जुगलजोड़ी ? (कुशलव के साथ वाल्मीकि का प्रवेश)

वा०—भैया कुशलव, यह रघुनाथ जी तुम्हारे पिता हैं, यह लक्ष्मण तुम्हारे पिता के कनिष्ठभ्राता हैं, यह सीतादेवी तुम्हारी जननी तथा ये राजर्षि जनक तुम्हारे नाना हैं ।

सी०—(हर्ष, करुणा, और आश्चर्य से देखकर) क्या यहां तात जनक भी हैं।

कु०ल०—हा तात, हामाता, हा नाना।

रा०ल०—(हर्ष से कुशलव को गले लगाके) निस्सन्देह बेटा तुम दोनों बड़े भाग से मिले हो।

सी०—आओ मेरे दोनों लाल, आज तुम्हारी मा का नयाजन्म हुआ है आओ बेटा मेरी छाती से लगजाओ (दोनों को छाती से लगाकर रोती है)।

कु०ल०—(मिलकर) हम दोनों धन्य हैं।

सी०—(वाल्मीकि की ओर) भगवन् तुम्हारे पांव पड़ती हूं।

वा०—ऐसो ही सकुटुम्ब सुख भोगती चिरायु हो।

सी०—आहा, तात जनक, कुलगुरु वशिष्ठ, सास कौशिल्याजी, पतिके सहित शान्तादेवी! लक्ष्मण और आर्यपुत्र के भयतापहरण चरणारविन्दों के संग प्यारे कुशलव भी दिखाई पड़ते हैं, आज अपने भाग्योदय को देखकर शरीर आनन्द से फूला नहीं समाता।

सी०—(उठकर देखके) लीजिये लवणासुर को मार मथुरेश्वर शत्रुघ्न भी आगये।

ल०—जब अभ्युदय होता है तब कल्याण की सब बातें एक साथ ही मिल जाती हैं।

रा०—सीता की प्राप्ति, पुत्रों का दर्शन और लवणासुर का वध आदि कल्याणों का इस समय अनुभव कर रहा हूं, तो भी न जाने क्यों मुझे प्रतीति नहीं होती, ऐसा मालूम होता है मानो मैं स्वप्न देखरहा हूं, अथवा जब अभ्युदय का तार बँध जाता है तब ऐसाही जान पड़ता है।

वा०—प्यारे रामचंद्र, कहिये आपका और क्या प्रिय करैं।

रा०—इससे अधिक अब क्या मनोरथ होगा, तथापि—

कलिमलकुल दूर करनि श्रेयद, मन-मोद-भरनि,
गाथा यह दुःख-दरनि, पुण्य-रासिनि।
मंगलमय जगमगाय, भुवन-मोहिनी सुहाय,
जग की जनु गंग माय, ताप नासिनी।
शब्द-ब्रह्म को प्रकास, जिह कविउर करत बास,
तिह सुप्रौढ़-बुधिविलास, मुदविकासिनी।
अभिनय कृत-भासमान, चरितामृत विसदज्ञान,
सत जन यहि करहिं पान, हिय विलासिनी ॥ २० ॥

(सब जाते हैं)

इति उत्तर रामचरित्र नाटक।

